नवयुग निर्माता





चमन शोर

प्रेम लाल सपरू
सुपुत्र
श्री तारा चन्द जी सपरू
बे. ऐ, बी, टी
पुरुषयार श्रीनगर
(काश्मीर)

नवयुग-निर्माता

(आधुनिक भारत के निर्माता छै महापुरुषों के जीवनचरित)

लेखक

सन्त गोकुलचन्द्र शास्त्री, बी० ए०

(भूतपूर्व) प्रधान संस्कृताध्यापक, डी० ए० वी० हाईस्कूल'

लाहौर

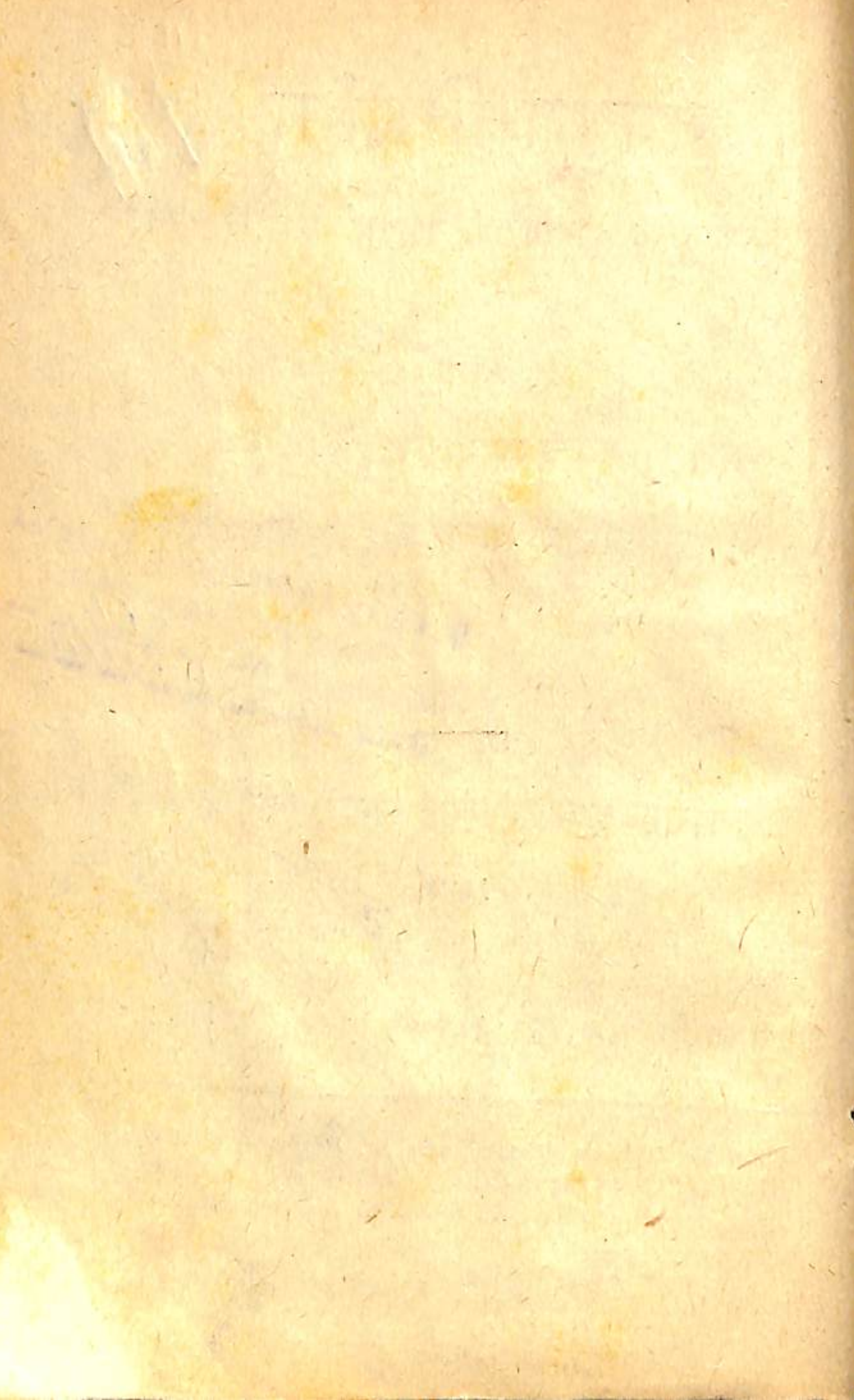
प्रकाशक

उत्तरचंद कपूर एण्ड सन्ज, लाहौर

१६४८

तीसरी आवृत्ति १५००० Rs. 3/-

Printed by L.Guran Ditta Kapur at Bharat Mudranalaya, Daryaganj, Delhi and Published by R. S. Ram Jawya Kapur. Proprietor, Uttar Chand Kapur & Sons, Delhi and Ambala:



ॐ

चमन लाल सपरु

[illegible] यार

श्रीनगर

कश्मीर

'नेता के बिना जाति नहीं हो सकत[illegible]

सच है

[illegible]

[illegible] लाल सपरु

२०१८.

विषय-सूचिका

कुछ प्रारंभिक शब्द

इतिहास साहित्य का एक विशिष्ट अंग है, जिसका निर्माण महान् व्यक्तियों की जीवन-घटनाओं, समय समय पर चलती और बदलती हुई विचार-धाराओं और शक्तियों के संघर्ष के आधार पर होता है। इसी लिए वैयक्तिक जीवनियों का इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान है। देश की निधि-नवयुवकों के चरित्रनिर्माण में जो जो काय महापुरुषों की जीवनियों का अनुशीलन करता है, वह साहित्य का कोई और अंग नहीं कर सकता। कहानियों और उपन्यासों से मनोविनोद अवश्य होता है परन्तु चरित्रनिर्माण में उनसे बहुत सहायता नहीं मिलती। इसके विपरीत, आजकल जैसा कहानीसाहित्य और उपन्यास नवयुवकों के हाथों में आ रहे हैं, उनसे तो उनके चरित्र बिगड़ने की अधिक संभावना है। दूसरे, इनका विषय बहुधा कल्पना पर आश्रित और तथ्यरहित होता है, जो किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता। सचाई से भावुकता इनमें अधिक रहती है। इनके विपरीत, उच्च पुरुषों की जीवनगाथायें एक प्रकार से आलोक-स्तम्भ होते हैं जो किसी भी उन्नतिप्रयत्नशील देश के युवकों को पथप्रदर्शन का काम देती रहती हैं। कथा-कहानियों अथवा उपन्यासों के आदर्शों से प्रभावित होकर किसी भी देश के नवयुवक आज तक कर्तव्यपथ पर अग्रसर नहीं हुए। प्रत्युत, कार्ल मार्क्स, गेरीबाल्डी, लेनिन, नेपोलियन, नेल्सन, ला० लाजपतराय,

महात्मा गांधी आदि महापुरुषों की जीवनगाथाओं ने न जाने कितने हृदयों में नवजीवन का संचार किया है, कितने नवयुवकों को स्वदेशसेवा के लिये कटिबद्ध किया है, कितनी आत्माओं को देश की वेदी पर बलि होने को उद्यत किया है।

इस लिये किसी देश की उन्नति के लिये, विशेषतः कई शताब्दियों से दीन-हीन अवस्था में पड़े रहने के बाद अब स्वतंत्र हुए भारत के पुनर्निर्माण के लिये यह नितान्त आवश्यक कि उसके युवकों के सामने उन उच्च आत्माओं के जीवन के लक्ष्य रखे जायें जो उनके मार्ग को आलोकस्तम्भ की तरह उज्वल करते रहें। इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक नवयुवकों के लिए लिखने का साहस किया है। इसमेंमें जिन महापुरुषों की जीवन-गाथायें दी गई हैं उनके जीवन का इतिहास एक प्रकार से भारत के नवयुग के संघर्ष का इतिहास है। इसमें यह दिखाने का यत्न किया गया है कि किस प्रकार उन उच्च आत्माओं ने संसारिक सुख-भोगों को लात मार कर तन-मन-धन से स्वदेश की सेवा की है और अब उसे उस स्थान पर ला खड़ा किया है कि जहां पर से वह संसार के दूसरे स्वतन्त्र देशों के साथ गर्व से सिर उठाये खड़ा होने का साहस कर रहा है।

श्री दादाभाई नौरो जी के समय में भारत की दशा बहुत हीन हो चुकी थी। उस समय स्वराज्य प्राप्त करने का यत्न तो दूर रहा, उसका नाम तक लेना भी घोर अपराध समझा जाता था। उस भीषण समय में उन्होंने निर्भयता से देशसेवा के मार्ग पर

पग रखा था। उन्हीं के समय में भारतजातीय कांग्रेस का जन्म हुआ था। वे उस दल के मुख्य सदस्य थे जिन्होंने भारत-स्वतन्त्रता का सूत्रपात और उसके लिये संघर्ष चलाया था।

नौरोजी के समकालीन लोकमान्य तिलक राजनैतिक क्षेत्र में कार्य कर रहे थे, पर इनके विचार उग्र थे। इस लिये जहां इन्हें ऐसी शक्तिशाली सरकार से लोहा लेना पड़ता था वहां श्री गोखले आदि कई नर्मदल के प्रभावशाली नेताओं से भी टक्कर लेनी पड़ती थी। फिर भी वे कभी हतोत्साह नहीं हुए। दोनों शक्तियों का डट कर मुकाबला करते रहे, अपने ध्येय की सफलता के लिये कई बार उन्हें चाहें कारा में बन्द भी रहना पड़ा। विद्या में वे किसी से कम न थे, साहस में किसी से पीछे न थे और यदि चाहते तो दूसरे लोगों की तरह लाखों रुपयों की सम्पत्ति भी एकत्र कर सकते थे। परन्तु उन्होंने न धन-सम्पति की और न किसी और बात की परवाह की। अपने सर्वस्व और जीवन तक को मातृ-भूमि के चरणों पर अर्पण कर स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ते रहे।

श्री रवीन्द्र का नाम किसने न सुना होगा! वे भारत-माता के उन सुपुत्रों में से थे जिनके कारण उनके देश का मुख संसार भर में उज्ज्वल रहता है। उन्होंने अपनी साहित्यसेवा और राजनैतिक सेवा से भारत की अपार सेवा की है।

इनके पश्चात स्वर्गीय महात्मा गांधी, अबुल कलाम 'आज़ाद' और भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री जवाहिरलाल की जीवनगाथाएं दी हैं। इनकी सेवाओं से कौन अपरिचित है! देश सेवा का जितना

काम इन व्यक्तियों ने किया है और कर रहे हैं, उसकी गाथा भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी। इनके उपदेशों, जीवनघटनाओं और निदर्शनों से प्रोत्साहित होकर लाखों नवयुवकों ने देश-सेवा का व्रत धारण किया है, हजारों ने अपने जीवन, इनकी तरह, काराओं की बंद कोठड़ियों में नष्ट कर डाले हैं, सैकड़ों ने अपनी जीवनयात्रा का मातृभूमि के चरणों पर अकाल में ही अंत कर दिया है।

ये हैं महाव्यक्ति जिनके जीवनों की पवित्रता से हमारे नवयुवकों के जीवन पवित्र होने चाहिएं। जिनके जीवन-उद्देश्य हमारे नवयुवकों के जीवन-उद्देश्य होने चाहिएं। ऐसे आड़े समय में, जिससे हमारी मातृभूमि अब गुजर रही है, नवयुवकों के सामने ऐसे ही साहित्य के स्थापना की अत्यावश्यकता है। इससे एक प्रकार से उन महापुरुषों के ऋण से भी हम किसी अंश में उन्मुक्त हो सकेंगे, नहीं तो संभव है कि उनके नाम तक हमारे स्मृति-पटल से मिट जायें और हम कृतघ्नतारूपी महापातक के भागी हों। इसी ध्येय से मैं यह रचना नवयुवकों के हाथों में दे रहा हूं।

इसमें जहां उनकी जीवनियों का संक्षिप्त वर्णन है। वहां प्रत्येक के अन्त में उनके कुछ चुने हुए विचार दिये गये हैं। इनसे पाठकों को बहुत लाभ होगा।

पुस्तक के अन्त में कुछ चुने हुए शब्दों का एक कोष अर्थ-सहित, दूसरा अर्थों के बिना दिया है! इसके मनन से छात्रों का शब्द-भंडार बढ़ेगा। अन्त में तीन विभागों (धाराओं) में प्रश्न

दिये हैं। पहले प्रश्न इनके जीवन की घटनाओं पर हैं, दूसरे आवश्यक शब्दों के प्रयोग और वाक्यार्थों के ज्ञान के लिए हैं। अन्त में व्याकरण के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न हैं। इनसे मेरा विचार है कि पुस्तक की उपादेयता, छात्रों के लाभ दृष्टि से और भी बढ़ जायगी।

श्री दादाभाई नौरोजी

प्रारम्भिक

किसी महापुरुष के जीवनवृत्त को अनुशीलन करने से पूर्व उन तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का भी अनुशीलन करना आवश्यक है, जिनमें उसे रहने और काम करने का अवसर मिला हो। आज से पचास वर्ष पूर्व यहां के राजनैतिक क्षेत्र में काम करना नंगी तलवार की तेज़ धार पर चलना था। उस समय स्वतंत्रता और स्वराज्य प्राप्त करने का साहस तो क्या, फिरा घुमा कर इन शब्दों की ओर संकेतमात्र करना भी राजविद्रोह समझा जाता था। यहां तक कि किसी छोटे-मोटे राजकर्मचारी के काम की आलोचना करना भी अपराध था। साथ ही भारतीय जनता इतनी शिक्षित न थी। राजनैतिक रहस्यों का समझना उनके लिये बहुत कठिन था। न वे लोग गंभीर लेख पढ़ सकते थे और न उनकी सभाओं में संभाषण सुनने की रुचि थी। ऐसे वातावरण

में जिन राजनैतिक नेताओं को काम करना पड़ता था, उनको कितनी और कैसी कैसी बाधाओं का सामना करना पड़ता होगा, यह आपही समझ लें।

इसके विरुद्ध आज कल क्या दशा है। स्वराज्य प्राप्त करना प्रत्येक जाति का जन्मसिद्ध अधिकार माना गया है। अब प्रश्न यह नहीं रहा कि स्वराज्य मिलना चाहिये अथवा न मिलना चाहिये, अपितु प्रश्न जनता के सामने यह है कि किन उपायों से उसे लिया जाय। अब तो हमारे शासक भी इसी प्रयास में हैं कि किसी न किसी तरह इस बोझ को अपने कन्धों से उठाकर देश-निवासियों के कन्धों पर रखा जाय।

राज्य-प्राप्ति के साधनों की भी पहले की अपेक्षा बहुलता है। प्रत्येक प्रान्त के बहुत से छोटे बड़े शहरों में कई दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और आर्धमासिक पत्र और पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं। उनमें हर तरह के लेख निकल कर जनता के सन्मुख आते रहते हैं। इनके अतिरिक्त राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के भी कई दल हैं। प्रत्येक दल का अपना अपना तैयार किया हुआ विशिष्ट क्षेत्र है। सप्ताह में कई बार भिन्न-भिन्न मंचों से चोटी के नेताओं के धुआंधार व्याख्यान होते रहते हैं। प्रान्तीय कौंसिलों द्वारा भी खासा प्रचार हो रहा है। पहले तो ये होती ही न थीं, यदि होती भी थीं तो उनमें उन्हीं शासकों द्वारा प्रेषित सदस्यों का प्रवेश होता था जो अपने स्वामियों का ही राग अलापने वाले होते थे। पर अब! अब तो इनकी बैठकों में राजकीय कर्मचारियों और उनके कृत्यों की

कड़ी से कड़ी आलोचनायें होती हैं जिनके द्वारा प्रजा में विशेष जागृति उत्पन्न हो रही है।

शिक्षा-प्रसार की भी पहली दशा से तुलना कीजिये। पहले शिक्षा नहीं के बराबर थी, सैकड़ों मनुष्यों में से कोई एक ही शिक्षित होता था। राजनीति के पेचीले और रहस्यमय विषयों को समझने की शक्ति तो किसी में ही होती थी। पर आज कल बच्चा बच्चा इन बातों को समझ रहा है।

सामाजिक सुधार का काम भी कुछ आसान न था। स्त्रियों को शिक्षित बनाना सामाजिक अपराध समझा जाता था। विधवाओं की दशा और भी दयनीय थी। उनके लिये सिवा इसके कि सारी उम्र सामाजिक अत्याचारों को सहते हुये गुज़ारें और कोई चारा न था। अस्पृश्यता के बोझ के नीचे दबे हुये करोड़ों व्यक्तियों का जीवन भारभूत हो रहा था। इधर मनुष्य समाज की यह दशा थी, उधर कोई भी सुधारक समाज में किसी प्रकार का भी सुधार करने का साहस न कर सकता था। यदि कोई करता भी था तो उसे म्लेच्छ आदि नामों से संबोधित कर जातिच्युत किया जाता था। विलायती यात्रा को घोर अपराध माना जाता था। उसे कुछ इनेगिने साहसी लोग ही कर सकते थे।

ऐसी विषम परिस्थितियों में जिन महापुरुषों को राजनैतिक या सामाजिक क्षेत्र में काम करना पड़ता था, उनके मार्ग में कितनी कठिनाइयां आती होंगी ! वे महापुरुष धन्य हैं जिन्होंने उनकी परवाह न कर कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया और आगे आने

वाले नेताओं के लिये सरणी तैयार की।

हमारे पूज्य नेता श्री दादा भाई नौरोजी उस समय के ऐसे ही कुछ व्यक्तियों में से थे। जिस कार्यकुशलता, अदम्य साहस और दृढ़ धैर्य से इन्होंने भारत की डगमगाती नाव को ठीक मार्ग पर चलाया, उनकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

दादाभाई नौरोजी वर्तमान भारत के विधाता, स्वराज्य-भावनाओं के उत्पादक और देश में जागृति की लहर को चलाने वाले थे। इनके निर्मल और पवित्र जीवन का वृत्तान्त थोड़े से ही नवयुवकों को पता होगा। परन्तु जिस कुशलता और बुद्धिमत्ता से इन्होंने इतनी ख्याति पाई है, उसे जानना प्रत्येक नवयुवक का कर्तव्य है। इनके आदर्श जीवन से उसे लाभ उठाना चाहिये।

जन्म और शिक्षा

दादाभाई नौरोजी एक पारसी परिवार के रत्न थे। इनका जन्म सन् १८२५ में बम्बई नगर में हुआ था। इनके पिता पारसी-पुरोहित थे। ये चार ही वर्ष के थे कि इनके पिता का देहान्त हो गया था। अतः ये उनकी छत्रच्छाया, शिक्षा-दीक्षा तथा लालन-पालन से वंचित रहे। इनकी माता बहुत शिक्षित न थी, परन्तु थी बहुत कुशाग्रबुद्धि। जब उसने देखा कि बालक के लालन-पालन और शिक्षण का बोझ उसी को उठाना होगा, तो उसने साहस और धैर्य से उसे उठाया। जिस दक्षता से उसने नौरोजी की शिक्षा का प्रबन्ध किया वह प्रशंसनीय है।

उन दिनों उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध कहीं भी न था। बम्बई

जैसे शहर में भी मनोवाञ्छित शिक्षा का मिलना दुर्लभ था। फिर भी इनकी माता ने इन्हें उत्तम से उत्तम शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। जहां इनकी माता इतनी बुद्धिमती थी वहां ये भी बहुत तेज़ और प्रतिभाशाली थे। थोड़े दिनों की शिक्षा के बाद ही चमक उठे। गणित-आदि विषयों में इनकी विशेष प्रवृत्ति थी। अपने सहपाठियों में ये किसी से पीछे न रहते थे। कई बार इन्हें पारितोषिक और छात्र-वृत्तियां भी मिली थीं। इससे अध्यापक इनसे बहुत संतुष्ट थे और इनका उत्साह बढ़ाते रहते थे।

बीस वर्ष की उम्र तक पहुँचते ही इन्होंने कालिज-शिक्षा समाप्त कर ली। इनकी सज्जनता, बुद्धिमत्ता और कार्य-दक्षता आदि गुणों पर मुग्ध होकर, बंबई हाई कोर्ट के प्रधान विचारपति तथा शिक्षाबोर्ड के प्रधान, सर एर्स्किन पेरी ने इन्हें इंगलेंड जाकर कानूनी शिक्षा लेने का परामर्श दिया। साथ ही उन्होंने इनकी शिक्षा के आधे व्यय का भार उठाने का विचार प्रकट किया। परन्तु जैसा ऊपर कहा गया है उन दिनों विलायत-यात्रा साहस का काम था। इनके पुराने विचार के कतिपय स्वजातीयों ने इनके विलायत जाने में इस लिए बाधा डाली कि कहीं वहां जाकर ये ईसाई न हो जायें। उन लोगों का ऐसा भय भी कुछ निर्मूल न था। इससे पहले कई नवयुवक पाश्चात्य जगत की बाहरी दमक से आकर्षित होकर स्वधर्म से भ्रष्ट हो चुके थे।

इसी अन्तर में बम्बई के सरकारी सेक्रेटेरियट में एक लेखक

की आवश्यकता हुई। इन्होंने भी उसको प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु सफल न हो सके। कैसी विधि-विडम्बना है कि जो व्यक्ति आगे चल कर तीस कोटि जनता का नेता बन सकता है और हज़ारों को उच्च से उच्च पदों पर पहुँचाने की शक्ति रखता है, वह स्वयं एक साधारण से पद से वंचित रह जाय ! वास्तव में देखा जाय तो उस पद का इन्हें न मिलना एक प्रकार से भारत के लिए उत्तम ही सिद्ध हुआ। इससे इनकी प्रवृत्ति देशसेवा की ओर हो गई। इन्होंने कुछ ही दिन बाद 'रास्तगुफ़्तार' नामक पत्र निकाल कर लोकसेवा का परिचय दिया।

सन् १८५० में ये एलफ़िन्स्टन कालेज में सरकारी अध्यापक नियुक्त हुए। उस काम को इन्होंने ऐसी उत्तमता और बुद्धिमत्ता से निभाया कि कुछ ही समय बाद ये वहीं पर ही गणित के मुख्य अध्यापक नियत किये गये। ये पहले ही भारतीय थे जिन्हें वह पद प्राप्त हुआ था। वहां पर ये सन् १८५५ तक काम करते रहे। जब ये अध्यापक ही थे तो इनके हृदय में देशसेवा की लगन दिन प्रतिदिन तीव्र हो रही थी। इन्होंने उस अंतर में भी कई समाजोपयोगी काम कर डाले थे। कन्या-पाठशाला, बम्बई एसोसियेशन, पुनर्विवाह-सभा, साहित्य और विज्ञान-सभा, पारसी व्यायाम-शाला तथा ईरानी फंड आदि कई उपयोगी संस्थाओं की प्रतिष्ठा की थी। सन् १८५५ से लेकर बराबर दस वर्ष तक इन्होंने ऐसी अनुकरणीय क्रियाशीलता और कार्यदक्षता से काम किया कि उसका परिचय पाकर आश्चर्यित होना पड़ता है। जिस समय देश अविद्यारूपी

तमोराशि से सर्वथा आच्छादित था, किसी को अपनी वास्तविक स्थिति का कुछ पता न था, उस समय भी इन्होंने जिस धीरता, गम्भीरता और साहस के साथ देशसेवा की उसकी जितनी श्लाघा की जाय थोड़ी है। ऊपर लिखित संस्थाओं की स्थापना के साथ साथ इन्होंने 'स्टूडेन्ट्स लिटरेरी मिसोलिमी' नाम का समाचारपत्र भी प्रकाशित किया जिसमें ये स्वयं ही निरन्तर लेख लिखते रहे। स्त्रीशिक्षा के पक्षपाती तो ये थे ही अतः उसके प्रचार के लिए इन्होंने उस पत्र में कई तर्कयुक्त और सारगर्भित लेख लिखे, जिनका बहुत प्रभाव हुआ। ॥ R.

नौरोजी के प्रचार का साधन केवल लेखों तक ही सीमित न था, ये व्याख्यानों द्वारा भी अपनी आवाज़ जनता तक पहुंचाने का यत्न करते रहे। जब ये स्त्री शिक्षा का प्रचार करते तो लोगों को इनकी बातें नई नई मालूम होतीं, क्योंकि स्त्री शिक्षा तब केवल ईसाइयों और कुछ उच्च स्तर के लोगों तक ही सीमित थी। अतः पहले पहल इनका घोर विरोध हुआ। लोग इन्हें बुरा भला कह कर ईसाइयों का एजंट बताते थे। परन्तु धीरवर जिस काम को हाथ में लेते हैं उसे पूरा कर के ही छोड़ते हैं। ये अपनी धुन के पक्के थे, अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। शनैः शनैः लोगों पर इनकी कर्तव्यनिष्टा और सच्ची लगन का असर होने लगा। अन्त में इनकी विजय हुई। बम्बई में प्रथम बालिका-विद्यालय स्थापित हुआ। आजकल शहर शहर और गांव गांव में जो स्त्री शिक्षालय तथा विद्यालय खुले हुए हैं, यह इन जैसे कर्मनिष्ठ व्यक्तियों के

निरन्तर प्रयास का ही फल है। आज अशिक्षित कन्या को भी उतना ही बुरा समझा जाता है जितना अशिक्षित पुत्र को।

विलायत-यात्रा

सन् १८५५ में इन्होंने कालिज की अध्यापक वृत्ति को परित्याग कर दिया और कामा कम्पनी की लन्दनवाली शाखा के संचालक बन कर इङ्गलैण्ड चले गये। जहाँ दस वर्ष पहले इन्हें स्वजातीयों के आग्रह के आगे माथा झुका कर इङ्गलैण्ड जाने का विचार छोड़ना पड़ा था, वहाँ इनके सामने अब कोई बाधा न थी, अपने विचारों के ये स्वयं स्वामी थे। इङ्गलैण्ड जैसे स्वतन्त्र देश में पदार्पण करते ही इनकी आँखें खुल गईं। ये जब उस देश की तुलना अपने देश से करते तो विस्मित रह जाते। वहां प्रत्येक व्यक्ति, क्या नर, क्या नारी, स्वतन्त्र वातावरण में पले हुए व्योमविहारी पक्षीगण की तरह स्वतन्त्र था और यहां सब लोग हर प्रकार से निगड़ित थे, न उन्हें राजनैतिक स्वतन्त्रता थी और न सामाजिक।

नौरोजी निराश होने वाले व्यक्तियों में से न थे। इन्होंने वहां पर भी भारतीय राजनैतिक विषयों में भाग लेना शुरू कर दिया। वहां के लोगों को भारतीय परिस्थिति का सच्चा ज्ञान कराने के लिए इन्होंने इङ्गलैंड के समाचारपत्रों में लेख लिखने आरम्भ कर दिये। साथ ही जब कभी किसी मंच से भाषण करने का अवसर मिलता तो उससे भी पूरा लाभ उठाते। फल यह हुआ

कि इङ्गलैंड के निवासी जहां पहले यहां की बातों से नितान्त अनभिज्ञ थे, वहां अब उनमें कुछ दिलचस्पी लेने लगे।

पहले पहल इन्होंने इंगलैंड में इस विषय पर आंदोलन चलाया कि इंडियन सिविल सर्विस परीक्षा में अंग्रेज़ों की भांति भारत-वासियों को भी बैठने का अवसर दिया जाय। इस में सफलता पाने के लिये इन्हें उत्कट प्रयास करना पड़ा। अंत में इन्हें सफलता मिली। चुनाव की प्रथा को उठाकर नियमानुसार सिविल सर्विस की परीक्षा होने लगी। तब से इस परीक्षा में कितने ही प्रतिभा-सम्पन्न भारतीय युवक भी प्रविष्ट हो कर सफल हो चुके हैं और उच्च पदों पर काम कर रहे हैं।

इस सफलता से दादाभाई नौरोजी का उत्साह और भी बढ़ा। फिर इन्हों ने इस बात के लिए प्रयत्न आरम्भ किया कि यह परीक्षा इंगलैंड और भारत में एक साथ होनी चाहिए, जिससे एक तो छात्रों को बहुत व्यय न करना पड़े और दूसरे, निर्धन पर प्रतिभाशाली युवकों को भी इस में बैठने का अवसर मिला करे। इसका प्रबल विरोध हुआ। इस सम्बन्ध में उच्च राजकर्मचारियों से विमर्श और लिखा पढ़ी के बाद भी इन्हें सफलता न मिली। पर नौरोजी किसी काम को अधूरा छोड़नेवाले नहीं थे, वे इस सदनुष्ठान से विरत न हुए। अपने प्रबल तर्क तथा युक्तियों द्वारा इन्हों ने कुछ उदाराशय अंग्रेज़ों को पहले अपने सहमत किया और पीछे सन् १८६२ में कामन्स् परिषद में उक्त विषय का प्रस्ताव पास करा लिया।

भारतनिवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए इन्होंने

इंगलैंड में इंडियन एसोसियेशन और ईस्ट इंडियन एसोसियेशन नाम की दो संस्थाएं श्री डबल्यु० सी० बानर्जी के सहयोग से स्थापित की थीं जो अब तक प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं । इनमें भारतीय ही नहीं अपितु अच्छे अच्छे चोटी के अंग्रेज़ लेखक भी भाग लेते और गवेषणापूर्ण निबन्ध पढ़ते हैं। ये संस्थाएं एक तरह से भारत और इंगलैंड को जोड़ने में शृंखला का काम कर रही हैं । कुछ समय तक नौरोजी यूनिवर्सिटी कालेज, लंदन में गुजराती के प्रोफेसर और सेनेट के मैंबर भी रहे हैं।

कुछ कारणों से इन्हें कामा कंमपनी से पृथक् होना पड़ा । सन् १८६२ में इन्होंने एक निजी कंपनी बना ली । यह कंपनी केवल चार बरस तक ही काम चला सकी क्योंकि इन्होंने अपनी पूंजी का एक बहुत बड़ा भाग किसी मित्र को देकर उसे दिवालिया होने से बचाया था । इससे प्रमाणित होता है कि ये बहुत उदाराशय थे ।

जब ये विलायत में थे तो इन्हें यह प्रतीत हुआ कि कोई भी भारतीय कामन्स सभा का सभासद हुए बिना अपने देश की सेवा नहीं कर सकता । इस विचार ने इन्हें पार्लियमेंट का सदस्य होने को उत्तेजित किया। इन्हें उदार पक्षवालों का समर्थन प्राप्त था, परन्तु उन दिनों अनुदार पक्ष वालों की धाक जम चुकी थी अतः ये सफल न हो सके ।

पुनः स्वदेश में

सन् १८६९ में नौरोजी स्वदेश लौट आये । बंबई में इनका

अपूर्व समारोह से स्वागत किया गया। स्वागत-समिति के प्रधान सर फ़ीरोज़शाह मेहता थे। उन्होंने इनकी प्रशंसा में बहुत प्रभावशाली भाषण दिया। जनता की ओर से इनको एक थैली भी भेंट की गई। परन्तु इन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया और उन रुपयों को सार्वजनिक सेवाकार्यों में व्यय के लिये दान दे दिया।

पार्लियमेंट के सदस्य

पार्लियमेंट-सम्बन्धी चुनाव की हार इन्हें बहुत खटकती थी। यहां पर रहते भी इन्हें उसी का ध्यान रहता था। अतः जब फिर चुनाव का समय आया तो ये पुनः इंगलैंड में जा धमके और ज़ोरों से उद्योग करना शुरू कर दिया। अंत में विजयमाला इनके गले में पड़ी। ये ही सब से पहले भारतीय थे जिन्हें ब्रिटिश पार्लियमेंट का सदस्य होने का अवसर मिला था। कामन्स-सभा में रह कर इन्होंने भारतोन्नति के संबन्ध में कई उद्योग किये।

सन् १८७३ में इनके प्रयास से भारत की आर्थिक अवस्था की जांच के लिए पार्लियमेंट ने श्री हेनरी फासिट के सभापतित्व में एक कमेटी नियुक्त की। उसके सामने इनकी भी साक्षी हुई थी। उस फासिट कमेटी के सामने इन्होंने युक्ति और तर्क से पूर्ण साक्षी दी और भारतीय अवस्था को निर्भयता से उसके सामने रखा।

आजकल बड़ौदा रियासत भारत की प्रगतिशील रियासतों में सर्वाग्रगण्य मानी जाती है। उसकी वर्तमान उन्नति नौरोजी के ही प्रयास का फल है। उन दिनों उसका आन्तरिक प्रबन्ध बहुत

बिगड़ा हुआ था। रियासती बुराइयों को दूर करना बड़ा कठिन काम था। सरकार ने इन्हें वहां का दीवान नियुक्त किया। उस समय वहां के रेज़िडेंट कर्नल फेयर एक मनचले व्यक्ति थे। वे इनकी नीति का समर्थन न करते थे। परन्तु दादाभाई उनकी बातों की परवाह न कर जो कुछ रियासत के सुप्रबन्ध के लिए उचित समझते थे, करते थे। अंत में दो वर्षों के अन्दर ही इन्होंने ऐसी सुव्यवस्था कर दी कि प्रजा ही नहीं अपितु स्वयं महाराज और अंग्रेज़ी शासकगण भी इनसे सन्तुष्ट हो गये। स्वयं भारतमंत्री ने इनके कामों की प्रशंसा की।

राजनैतिक कार्य

बड़ौदा की दीवानी के पद को छोड़कर नौरोजी बम्बई के म्युनिसिपल कमिश्नर बने। इस अन्तर में इन्होंने भारतीय शासन में सुधार-विषयक आंदोलन फिर से आरम्भ कर दिया। सभाओं में व्याख्यान देकर और समाचारपत्रों में लेख लिख लिख कर इन्होंने केवल अपने ही बल पर स्वदेश में जागृति उत्पन्न करने का बीड़ा उठाया। जब सर फिरोज़शाह को इनकी सच्ची लगन और कार्यकुशलता का ज्ञान हुआ तो वे भी इनका साथ देने लगे। सन् १८८५ में ये बम्बई कौंसिल के सदस्य चुने गये। इसी वर्ष इनके और महात्मा रानाडे, मि० ह्यूम और श्री डबल्यू. सी. बानर्जी के सम्मिलित प्रयत्न से राष्ट्रीय महासभा, कांग्रेस की नींव डाली गई। कांग्रेस का जब दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ तो ये उसके सभापति निर्वाचित हुए। वहां पर जो वक्तृता इन्होंने की उससे इनकी योग्यता और

दूरदर्शिता की धाक जम गई। लोगों में नवजीवन का संचार हो गया। आपके शब्द थे:—

"एक हो जाओ। दृढ़ता से काम करो। उन अधिकारों को प्राप्त करो जिससे वे आत्माएं बनाई जा सकें, जो दरिद्रता, अकाल, और प्लेग से नष्ट हो रही हैं, जिनसे उन करोड़ों आदमियों को भरपेट भोजन मिले जो भोजन बिना भूखे मर रहे हैं, और जिनसे भारत को संसार के सर्वश्रेष्ठ सभ्य राष्ट्रों में फिर वही गौरवान्वित स्थान मिल सके जो प्राचीन समय में उसे प्राप्त था।"

सन् १८९३ में ये फिर लाहौर में होनेवाली नवम कांग्रेस-महासभा के सभापति चुने गये। उस समय जैसे समारोह से इनका स्वागत पंजाब के मुख्य केन्द्र लाहौर ने किया वैसा बड़े बड़े राजे-महाराजाओं का भी कभी नहीं हुआ था। इनका जलूस शहर के प्रमुख भागों में से गुज़ारा गया। इनपर पुष्पवृष्टि और कहीं कहीं रुपयों की वृष्टि की गई। प्रत्येक नगर-वासी ने इस समारोह में सब से बढ़ कर भाग लिया। उस अधिवेशन में जो व्याख्यान इन्होंने दिया वह अपूर्व प्रभावशाली था।

कुछ समय बाद बृटिश पार्मियामेंट के नये चुनाव का अवसर आ गया। उसके सदस्य बनने की लालसा इनके मन में फिर उदित हुई। वहां जाकर उन्होंने फिर वह चुनाव लड़ा। परन्तु कृतकार्य न हो सके।

सन् १९०६ में ये फिर कलकत्ता की कांग्रेस के प्रधान निर्वाचित हुए। इसी अधिवेशन में इनके उद्योग से भारतीय स्वराज्य

की मांग का प्रस्ताव पास हुआ।

मृत्यु

नौरोजी की उम्र नब्बे साल से अधिक हो चुकी थी। इस समय यद्यपि वे वृद्ध हो चुके थे और देह में चाहे कुछ स्वाभाविक शिथिलता भी आ गई थी, परन्तु आत्मा में वही यौवन की ज्वाला धधक रही थी। स्वतन्त्रता देवी के मन्दिर में प्रवेश करने की लालसा पूर्ववत् विद्यमान थी।

३० जून, १९१७ की संध्या का समय था। भारतवर्ष के वृद्ध पितामह, राजनैतिक गगनमंडल के देदीप्यमान नक्षत्र, भारतीय नेताओं के मुकुटमणि, महात्मा दादाभाई नौरोजी रुग्ण-शय्या पर पड़े जीवन की घड़ियां गिन रहे थे। उनके मुख पर तेज की वही रश्मि झलक रही थी जो किसी भी ईश्वरेच्छा पर निर्भर, देश के सच्चे सेवक, कृतकार्य महापुरुष के मुख पर होती है। आस पास मित्र, बांधव, देश के प्रमुख नेता बैठे थे। भारत भर की जनता बुझे हुए दिलों से अशुभ समाचार को सुनने के लिए खिन्न बैठी थी। इतने में उनकी आंखें बन्द हुईं और आत्मा ने शरीर का साथ छोड़ कर परलोक गमन किया।

इस समाचार के देश में पहुँचते ही लोगों में उदासीनता छा गई। सभा-समाजों के विशेष अधिवेशनों में ईश्वर से स्वर्गत आत्मा को शान्ति प्रदान करने को प्रार्थना की गई और उनके सम्बधियों से समवेदना प्रकट की गई। देश और विदेशों से हजारों समवेदना के तार इनके परिवार को मिले।

श्री दादाभाई अब हमारे मध्य में नहीं हैं, परन्तु इनकी आत्मा अब भी हमारे मध्य में काम कर रही है। इनके निर्दिष्ट उद्देश्य अब भी चालीस कोटि भारतीयों की आंखों के सामने हैं। ये अपने भाषणों द्वारा जो उपदेश हमें कर गये हैं वे अब भी हमारा पथप्रदर्शन कर रहे हैं।

एक सार्वजनिक और सच्चे नेता में जो गुण होने चाहिएं वे प्रायः सब नौरोजी में विद्यमान थे। स्वार्थत्याग की भावना, देश-भक्ति, अदम्य उत्साह, स्थिरचित्तता और स्वावलंबन आदि गुण उनमें प्रारम्भ काल से ही थे और मृत्युपर्यन्त रहे। इनका स्वभाव बहुत सरल और शान्त था। इनके व्यवहार से बच्चे, बूढ़े सब सन्तुष्ट थे। बच्चों के ये बच्चे थे, युवकों के युवक और बूढ़ों के बूढ़े। इनके संभाषण में मन्त्रशक्ति थी, जिसके साथ संभाषण करते उसे मुग्ध कर वश में कर लेते। परिश्रम की मात्रा तो इनमें उस समय भी अगाध थी जब ये ढलती जवानी और बुढ़ापे के आरम्भ में थे। जिस काम को हाथ में लेते थे उसे पूरा कर ही छोड़ते थे। इनके मित्रगण की संख्या बहुत बड़ी थी, क्योंकि जिसे मित्रता के नाते इन्होंने अपनाया उसका साथ कभी नहीं छोड़ा।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' जब नौरोजी पंद्रह वर्ष के थे तभी से इनके हृदय में सदाचरण के विचार अंकुरित होने लग गये थे। इन्होंने लिखा है'—' एक दिन मेरे हृदय में बुरी बातों से घृणा के विचार का उदय हुआ। उसी समय एक

स्थान पर बैठ कर मैंने प्रण किया कि आज से कभी बुरी बात मुंह से न निकाला करूंगा। उसी दिन से बुरी बातों के त्याग और अच्छी बातों के ग्रहण करने के भाव मेरे मन में जागृत होने लगे। आज तक वे भाव निरन्तर दृढ़तर होते जारहे हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में श्री दादाभाई नौरोजी का नाम स्वर्णाक्षरों में सब से ऊपर लिखा रहेगा।

दादाभाई के कुछ विचार

१—स्वावलंबन और जीवन पर्याय-शब्द हैं। जो व्यक्ति अथवा देश स्वावलंबी नहीं उसे जीने का कोई अधिकार नहीं।

२—एकता में ही बल है। रस्सी के एक एक अलग तागे और उनसे बनी हुई रस्सी का निदर्शन सदा अपने सामने रक्खो।

३—स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। जिस प्रकार किसी को स्वतन्त्रता से वंचित करना पाप है, उसी तरह उससे वंचित होना भी पाप है।

४—उन्नति के मार्ग में प्रत्येक पग तौल कर रक्खो। परन्तु जो पग एक बार आगे रक्खा जाय वह फिर पीछे न मुड़ने पाय।

५—स्वराज्य के संग्राम में जो स्थान पुरुषों का है स्त्रियों का भी वही है।

६—'जहां नारियों का पूजन होता है वहां देवता निवास करते हैं।' इस आदर्श को हम छोड़ते चले जा रहे हैं।

७—सदाचरण और ध्येयसफलता में मैत्री है। सदाचारी पुरुष कभी निष्फल नहीं होता।

८—एक समय पर एक ही कार्य को हाथ में लो। एक से ज्यादा ओर ध्यान रहने से कोई भी काम हो नहीं पाता।

९—प्रत्येक व्यक्ति स्वयं संघर्ष में भाग नहीं ले सकता परंतु जो उसमें भाग ले रहे हैं, उनकी सहायता वह किसी न किसी रूप में कर सकता है।

१०—रुग्ण-शय्या पर पड़े रहने से देशसेवा के क्षेत्र में काम करते करते खेत आना कहीं उत्तम है।

११—उस अधिकार को प्राप्त करो जिससे वे लाखों आत्माएं बचाई जा सकें, जो दरिद्रता, अकाल और प्लेग से नष्ट हो रही हैं, जिससे करोड़ों आदमियों को भरपेट भोजन मिले जो भोजन के बिना भूखों मर रहे हैं।

१२—शिक्षित होना प्रत्येक व्यक्ति, नर और नारी का अधिकार है। जो शासक इसे उससे वंचित करता है वह महापाप करता है।

१३—संसार के इतिहास में यह प्रथम निदर्शन है कि तीस कोटि प्राणी परकटे पक्षियों के समान कुछ कर धर न सकें।

१४—वही संग्राम जीता जा सकता है जिसमें प्रत्येक सैनिक समय पड़ने पर नेता और संचालक बनने की योग्यता रक्खे।

१५—विधवा और सधवा स्त्री में कोई भेदभाव न होना चाहिए। दोनों देश-निधि के एक जैसे रत्न हैं। विधवाओं की दुर्भाग्य-यातना को हमें घटाने का यत्न करना चाहिए न कि बढ़ाने का।

श्री बाल गंगाधर तिलक

प्रारम्भिक

सृष्टि के अटल नियम के अनुसार जिस वस्तु या व्यक्ति की जब कभी आवश्यकता होती है, तब ही परमात्मा उसके उत्पादन के साधन भी उत्पन्न कर देते हैं। तिलक जी के जन्म से पूर्व भारत के सामने कई नई समस्यायें उपस्थित हो चुकी थीं। जो भारत कई शताब्दियों पूर्व भी, जब दूसरे देश और जातियां अन्धकार और असभ्यता के गढ़े में पड़ी पड़ी अपने दिन काट रही थीं, सभ्यता के उच्च शिखर पर आरूढ़ था, जिसकी प्रत्येक क्षेत्र में धाक जम चुकी थी, जिसका लोहा दूसरे देश मान चुके थे, उसकी वर्तमान अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। परमुखापेक्षी होकर वह अंधकारगर्त में पड़ा हुआ अपने जीवन की घड़ियां गिन रहा था। ऐसी अवस्था में एक ऐसे नेता की इसे आवश्यकता थी, जो साहसी, दृढ़व्रत, निर्भय, सदाचारयुक्त

और सुदूरदर्शी हो। ईश्वर ने इन्हीं गुणों को देकर तिलक जी को अवतीर्ण किया।

वंश-परिचय

तिलक जी के पिता श्री रामचन्द्र गंगाधर राव संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि निर्धनता के कारण उन्हें अंग्रेज़ी के अध्ययन का संयोग नहीं मिला था तो भी उन्हें गणित का विशेष ज्ञान था। पहले पहल वे एक स्कूल में पांच रुपये मासिक पर अध्यापक नियत हुये थे। पश्चात् क्रमशः उन्नति करते करते शिक्षा-विभाग में डिप्टी इंस्पेक्टर के पद तक पहुँच गये थे।

इनकी तीन लड़कियां और एक लड़का था। यह ही बालक पिता के वंश को संसार भर में प्रसिद्ध करने वाले हमारे बाल-गंगाधर तिलक थे। इनका जन्म २३ जुलाई, सन् १८५६ को रत्न-गिरि में हुआ था। इनका जन्मनाम केशव था, बलवन्तराव तिलक व्यवहृत नाम था और संकेतिक नाम बाल था। इनके पिता का नाम गंगाधर था। अतः महाराष्ट्र प्रथा के अनुसार इनका नाम बाल गंगाधर तिलक प्रसिद्ध हुआ।

बचपन और शिक्षा

तिलक जी की प्रतिभा सभी सहपाठियों में प्रखरतम थी, जो कुछ ये पढ़ते इन्हें तुरन्त कंठस्थ हो जाता था। जब ये स्कूल में पढ़ते थे तो इनका यह नियम था कि घर के बाहर कुछ खाते पीते न थे। एक दिन की घटना है कि अध्यापक ने इनपर पाठकक्षा में मूंगफली खाने का दोष लगाया, जो कि निर्मूल था। इससे इनकी

बड़ा मानसिक आघात लगा और उस दिन से स्कूल में जाना ही बन्द कर दिया। स्कूल के अतिरिक्त इनकी शिक्षा अपने पिता के द्वारा घर में भी होती थी। इनके पिता इनका उत्साह बढ़ाने के निमित्त इन्हें एक श्लोक कंठस्थ करने पर एक पाई पुरस्कार देते थे। एक दिन इन्होंने इतने श्लोक कंठस्थ कर डाले कि उस दिन इनके पिता को इन्हें पूरे दो रुपये पुरस्कार देना पड़ा। ये इतने तीव्रबुद्धि थे कि आठ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने संस्कृत के कई ग्रंथ पढ़ डाले थे। कुछ काल बाद जब इनके पिता को नौकरी के कारण पूना जाना पड़ा था तो ये भी उनके साथ वहां गये थे। वहां पर भी इनके पढ़ने का अच्छा प्रबन्ध हो गया था।

तिलक जी की शिक्षा का यह सुयोग अधिक दिनों तक रह न सका क्योंकि सन् १८७२ में, जब इनकी उम्र सोलह वर्ष की थी, तो इनके पिता चल बसे। इससे इनको कष्ट तो बहुत हुआ, किन्तु इनके अध्ययन में कुछ बाधा न पड़ी। इनकी माता जी का देहावसान इनकी दस वर्ष की उम्र के समय ही हो चुका था, इससे इनके लालन-पालन का भार इनकी काकी को उठाना पड़ा था। सन् १८७३ में इन्होंने दक्खिन कालिज में प्रवेश किया और वहीं से बीस वर्ष की अवस्था में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। इनका मस्तिष्क इतना सजग था कि इन्हें कुछ भी रटना नहीं पड़ता था। जिस समय ये पढ़ने में व्यग्र होते थे तो उसमें इतने लीन हो जाते थे कि इन्हें इधर उधर की ज़रा भी सुध-बुध न रहती थी।

एक समय की बात है, इनका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया।

इन्होंने और सब काम छोड़ दिये और उसे ही सुधारने के पीछे पड़ गये । प्रातः ये कुश्ती लड़ते और तैरते और सायं को खेल खेलते और भ्रमण करते । इन्होंने तब तक व्यायाम का यही क्रम जारी रक्खा जब तक इनका स्वास्थ्य बिल्कुल सुधर न गया ।

बी० ए० में उत्तीर्ण होने के बाद इन्होंने एल० एल० बी० पास किया परन्तु वकालत का विचार ही नहीं किया क्योंकि ये सार्वजनिक कार्य करने को सोच रहे थे । उस समय के इनके सहपाठी वकालत में और सरकारी पदों पर बहुत बड़ी प्रतिष्ठा लाभ कर चुके हैं और यदि ये भी वैसी ही वृत्ति का अवलम्बन करते तो किसीसे पीछे रहने वाले न थे । परन्तु इन्होंने ऐसा नहीं किया और एक अपूर्व त्यागशीलता का परिचय दिया ।

व्यवहार-क्षेत्र में

अध्ययन से निवृत्त होकर इन्होंने अपने प्रिय सुहृद आगरकर और उस समय के प्रसिद्ध मराठी विद्वान् चिपलूकर के सहयोग से संवत् १९३७ में पूना में 'न्यू इङ्गलिस स्कूल' खोला जो उन्नति करते करते आगे चलकर परग्यूसन कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

उस समय सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में एक न्यूनता थी जो इन्हें बहुत खटकती थी । बम्बई प्रांत में ऐसा कोई भी पत्र न था जो जनता के लाभ का पक्ष लेकर आंदोलन करता और शासन विभाग की त्रुटियों को सबके सामने रख कर अपनी निर्भीक और निष्पक्ष सम्मति देता । इन्होंने अपने मित्र आगरकर के सहयोग से मराठी

में 'केसरी' को और अंग्रेज़ी में 'मराठा' को जन्म दिया। ऐसे पत्रों के लिए क्षेत्र विस्तीर्ण और अपूर्ण था ही, इसलिए वे दोनों शीघ्र चल निकले। लोग उनकी ओर आकर्षित होने लगे और कुछ समय में ही वे दोनों एक तरह से सर्वप्रिय हो गये।

शासकगण के कृत्यों की कड़ी समालोचना इन पत्रों का ध्येय था। बड़ौदा के महाराज मल्हारराव गायकवाड़ को गद्दी से च्युत करके उनके उत्तराधिकारी सयाजी राव को सरकार ने गद्दी पर बैठा दिया था, परन्तु उसे अधिकार नहीं दिये थे। रियासत का सारा कारोबार दीवान माधवराव के ही सपुर्द था। प्रजा इससे असन्तुष्ट थी। केसरी में सरकार की इस पक्षपातपूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की गई।

इसके साथ ही एक घटना और हुई। अंग्रेज़ी सरकार ने कोल्हापुर के महाराज शिवाजी राव को पागल ठहरा कर राज्य के शासन की बागडोर दीवान माधवराव बर्वे के हाथ में दे दी थी, जो अंकुंठित होकर मनमाना व्यय कर रहा था। उसकी यह नीति प्रजाजनों को ग्राह्य नहीं थी। इस बात की भी केसरी ने बड़ी कठोर आलोचना की। इससे क्रुद्ध होकर दीवान माधवराव ने सरकारी अनुज्ञा लेकर केसरी पर अभियोग चला दिया। इसी विषय पर कई अन्य पत्रों ने भी लेख लिखे थे। उन पर भी अभियोग चले थे परन्तु सब ने क्षमा मांग कर अपनी २ जान बचा ली थी। परन्तु तिलक जी किसी झुकने वाली लकड़ी के न बने थे। इन्होंने क्षमा नहीं मांगी, अतः इन्हें चार मास का दंड दिया गया।

तिलक जी और आगरकर में मित्रता तो बहुत थी, दोनों ही इन पत्रों के सम्पादक और संचालक थे, परन्तु फिर भी कुछ धार्मिक और समाजिक विषयों पर उनमें मतभेद था। अतः संवत् १९४५ में आगरकर इन पत्रों से अलग हो गये। परिणाम यह हुआ कि इन दोनों का संपादनभार तिलक जी के कंधों पर ही आ पड़ा।

लोकमान्य कट्टर सुधारवादी थे, परन्तु इनकी यह नीति थी कि जनता की प्रवृत्ति के विरुद्ध ये सुधार न चाहते थे। इनका सिद्धान्त था कि जनता को साथ लेकर सुधार के पथ पर चलने से लाभप्राप्ति हो सकती है। पर इस नीति के साथ ही ये सरकार के द्वारा समाजिक सुधार के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के विरुद्ध थे। अतः जब बबई-प्रान्त में सामाजिक सुधार-कार्य में सरकार ने हस्तक्षेप करना चाहा तो इन्होंने इसका घोर विरोध किया। परिणाम यह हुआ कि पूना में शिक्षित वर्ग दो दलों में विभक्त हो गया, एक सामाजिक सुधार का पक्षपाती और दूसरा उसका विरोधी।

तिलक जी जितने प्रतिभासम्पन्न थे उतने ही कार्यकुशल और साहससंपन्न भी थे। ये 'मराठा' और 'केसरी' का संपादान भी करते और राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में भाग भी लेते। साथ ही इन्होंने पूना में एक संस्था प्रतिष्ठित की हुई थी जहां पर ये वकालत सीखने वालों को शिक्षा भी देते थे। इतने कार्यरत होने पर भी ये कुछ न कुछ समय स्वाध्याय में लगाते। स्वाध्याय को ये कभी न छोड़ते। इसी समय इन्होंने वैदिक साहित्य का अनुशीलन किया और वेदों की प्राचीनता के विषय में कई उत्तम लेख लिखे।

संवत् १९४९ में लन्दन में प्राच्यविद्या-विशारदों की परिषद् की एक बैठक हुई थी। उसमें इन्होंने अपने 'ओरियन' नामक लेखों का एक संग्रह भेजा जिसके कारण उस बैठक में इनकी उन्मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई। तब से इनकी गणना साहित्यिक खोजियों के उच्चतम शिखर पर होने लगी।

राजनैतिक क्षेत्र में

लोकमान्य का कार्यक्षेत्र यद्यपि सामाजिक और साहित्यिक भी रहा है, परन्तु अधिक रुचि इनकी राजनैतिक क्षेत्र में ही थी। कई वर्षों तक ये कांग्रेस कमेटी के मन्त्री और बम्बई कांफ्रेंस के संचालक रहे। इन पदों पर रह कर ये सरकार की नीति का चौकन्ने होकर निरीक्षण करते रहते और जब कभी आवश्यकता होती उसकी तीव्र आलोचना भी करते। इससे इन्हें कई बार उत्कट बाधाओं का सामना करना पड़ा, परन्तु ये अपने ध्येय से कभी पीछे नहीं हटे। इसीसे जनता का इन पर पूर्ण विश्वास रहता था और उसी के प्रतिनिधि रूप में ये दो बार प्रांतीय कौंसिल में गये। संवत् १९५२ में ये पूना की म्युनसीपल्टी के सदस्य चुने गये। इसी वर्ष पूना में कांग्रेस का ग्यारहवां अधिवेशन होने को था। इन्हें स्वागतसमिति का मंत्रीपद दिया गया। परन्तु सहकारियों से कुछ मतभेद हो जाने पर इन्होंने उसे त्याग दिया। फिर भी कांग्रेस की सफलता के लिए पूर्ण यत्न करते रहे।

लोकमान्य अपने देश और देशवासियों की उन्नति के लिए यथासाध्य प्रयास करने को सदा सन्नद्ध रहते थे। संवत् १९५३

में देश में भयंकर दुर्भिक्ष का आक्रमण हुआ था। उस समय इन्होंने न दिन देखा न रात, तन मन धन से दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा की। जगह जगह सस्ते दामों पर अनाज बेचने वाली दूकानें खुलवाईं। हज़ारों लोगों को मृत्यु-मुख से बचाया। फिर जब पूना में प्लेग का प्रकोप हुआ तो भी इन्होंने प्राणों का मोह छोड़ कर प्लेग-पीड़ितों की सेवा की। जहां दूसरे लोग शहर छोड़ छोड़ कर भाग रहे थे वहां यह वीर हथेली पर जान लिए कार्यक्षेत्र में डटा था। इन कारणों से ये जनता के बहुत समीप आते गये और उसके विश्वस्त और स्नेहभाजन बनते गये।

सदियों से परतन्त्र रहने के कारण भारतीयों में से देशाभिमान और स्वाभिमान के भावों का लोप हो चुका था। लोकमान्य चाहते थे कि किसी उपाय से उनके हृदयों में वे भाव फिर से जागृत हो जायें। इसी उद्देश्य से इन्होंने वीर शिवाजी की जयन्ती मनाने का आयोजन देश के सामने रखा। इसी संबन्ध में कई सारगर्भित लेख भी केसरी में प्रकाशित किए। लोगों ने इनकी इस आयोजना का बहुत आदर किया और संवत् १९५४ के ज्येष्ठ मास में यह महोत्सव प्रथम बार बड़े समारोह से पूना में मनाया गया। उस उत्सव में एक कविता पढ़ी गई थी। उसे केसरी में प्रकाशित किया गया। संयोगवश उन्हीं दिनों दो अंग्रेज़ों की हत्या की गई थी। सरकार ने उस हत्याओं के कारण उस कविता द्वारा जनता मे उत्पन्न किये हुए जोश और उग्र भावों को ठहराया। अतः इन्हें गिरफ्तार कर इन पर अभियोग चलाया गया और अठारह मास का इन्हें कारावास दिया गया।

परन्तु कुछ ही समय बाद इनके मित्र और संस्कृत के विद्वान प्रो० मैक्समूलर ने महारानी विक्टोरिया से विनय कर इन्हें मुक्त करवा दिया। उस समय ये छै मास का कारावास भोग चुके थे।

साहित्य-परिशीलन इनके जीवन का एक आवश्यक भाग बन चुका था। विषम परिस्थितियों में भी इन्होंने साहित्यसेवा का कार्य कभी शिथिल नहीं होने दिया, पुस्तकाभ्यास निरन्तर चालू रक्खा। पहले इन्होंने 'आग्रहायण' प्रकाशित किया और उसके पश्चात् 'सुमेरु पर हमारे पितरों का निवास' नामक एक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया। इसमें इन्होंने युक्ति और प्रमाण सहित यह सिद्ध किया है कि वेदों के आदि लेखक उत्तरध्रुव के हिमप्रदेश के निवासी थे। इसे पढ़कर प्राच्यविद्याविशारद विद्वान् मुग्ध हो गये और उन्होंने इनकी मुक्तकंठ प्रशंसा की।

कुछ दिन बाद तिलक जी को एक झगड़े में व्यर्थ उलझना पड़ा। पूना के प्रसिद्ध सरदार श्री बाबा सरदार ने इन्हें अपना मित्र मान कर अपनी सम्पत्ति का एक ट्रस्टी नियत किया था। कुछ काल बाद श्री बाबा की मृत्यु हो गई। उनके पीछे लोकमान्य ने रियासत के ऋण के भार को हलका करने और एक योग्य पुत्र को रानी की गोद में बैठाने की चेष्टा की। इससे उनको विधवा श्री ताई जी और उनके कहने से दूसरे ट्रस्टी भी इनके विरुद्ध हो गये। उन्होंने लोकमान्य पर अनुचित अधिकार पाने की चेष्टा और मिथ्या भाषण का अभियोग चलाया। प्रारम्भिक कोर्ट में इन्हें अपराधी ठहराया गया परन्तु पीछे हाई कोर्ट में अपील उपस्थित

करने पर ये मुक्त हो गये । इससे इनके चरित्र पर जो कलंक-कालिमा इनके विरोधी लगाना चाहते थे वह मिट गई। परिणाम यह हुआ कि लोकदृष्टि में ये और भी आदरणीय हो गये।

संवत् १९६२ में सरकार ने बंगाल को दो भागों में विभक्त करने का निर्णय किया। सारे भारत में इनका विरोध हुआ। बंगाल में इसके विरुद्ध विशेष आंदोलन हुआ। स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने इसमें विशेष भाग लिया था। लोगों में सरकार के विरुद्ध उग्र भाव उत्पन्न हो गये। विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार की लहर उठी और क्रियात्मक रूप लेकर समग्र भारत में फैल गई। लोकमान्य का इस आंदोलन में विशेष हाथ था। इस विषय पर 'केशरी' और 'मराठा' में उनके जोशीले लेख छपते थे। उस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन बनारस में हुआ था और उसके दूसरे वर्ष कलकत्ता में। दोनों अधिवेशनों में विदेधी वस्तुओं के वहिष्कार के प्रस्ताव पास हो गये। इनके प्रस्तुत और पास कराने का श्रेय तिलक जी को अधिक था।

बंगाल के लोगों में बहुत जोश था। कई नवयुकों के विचार बहुत उग्र हो गये थे। गुप्त दल बनाकर वे काम करने लग गये थे। इससे कई भीषण घटनाएं हुई। संवत् १९६५ में एक नवयुवक ने मुज़फ्फरपुर के कलेक्टर के कुटुम्ब की दो महिलाओं की हत्या कर डाली। इससे अधिकारी वर्ग बौखला उठा। दमनचक्र शुरू हो गया। धरपकड़ आरम्भ हो गई। इसी सम्बन्ध में केशरी में एक लेख निकला। लेख की भाषा और विचार कुछ

कुछ उग्र थे। अतः इन पर अभियोग चलाया गया। इन्होंने उस मुकद्दमे की पैरवी स्वयं की। इनकी तर्कधारा तथा स्पष्ट उत्तरों का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। फिर भी इन्हें निर्दोष नहीं ठहराया गया। एक हज़ार रुपया जुर्माना और छै वर्ष का निर्वासन-दंड इन्हें दिया गया। दंड सुनकर ये ज़रा भी विचलित नहीं हुए और शांति के साथ कचहरी से बाहर आगये। दंड को सुनकर जो शब्द इन्होंने कहे थे वे केसरी में पद्यरूप में छपे थे। उनका हिंदी-अनुवाद इस प्रकार है:—

आज मुझे जूरी ने यद्यपि अपराधी ठहराया है।
तो भी मेरे मन ने मुझको निर्दोषी बतलाया है।
मानव शक्ति कहीं भी जिसके आगे कोई चीज़ नहीं,
ऐसी ऊँची शक्ति सदा संसारचक्र है चला रही।
ईश्वर का संकेत मनोगत ऐसा मुझको देख पड़े,
मेरे संकट सहने ही से इस हलचल का वेग बढ़े॥

लोकमान्य के निर्वासन से देशभर में कोलाहल मच गया। इसके प्रतिरोध में सर्वत्र सभाएँ हुईं और निर्वासन के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुए। बड़े बड़े शहरों में हड़तालें हुईं, विशेषतः बम्बई में यह कई दिनों तक जारी रही।

जब तिलक जी को छै साल का निर्वासन हुआ था उस समय इनकी उम्र पचास साल की थी। इन्हें अपना निर्वासनकाल मांडले में काटना पड़ा। जो मनुष्य उम्र भर कभी निष्क्रिय न बैठा हो वह इतना लंबा काल निकम्मा रह कर कैसे व्यतीत कर सकता था!

इन्होंने साहित्यिक कार्य हाथ में लिया और गीता का, जोकि संसार की अमूल्य निधि है, अनुशीलन प्रारम्भ किया। उसका इन्होंने उत्तम अनुवाद किया और साथ ही उसकी एक सारगर्भित व्याख्या भी लिखी। जब कारावास की अवधि समाप्त होने पर ये जेल से बाहिर आये तो इन्होंने उस ग्रंथ 'गीता-रहस्य' को छपवाया। उस अनुपम पुस्तक का लोगों ने बहुत स्वागत किया। इससे इनका नाम अमर हो गया है।

जब लोकमान्य तिलक जेल से छूट कर आये तो योरप के प्रथम विश्वव्यापी युद्ध का आरम्भ हो चुका था। इन्होंने उस समय यही उचित समझा कि इस आड़े समय में बृटिश राज्य की सहायता की जाय। इसका इन्होंने प्रचार किया और उस प्रचार का यह फल हुआ कि जनता ने तन मन धन से साम्राज्य की सहायता की।

छै साल की लम्बी-यातना भुगतने के कारण तिलक जी का स्वास्थ्य बिगड़ चुका था, अतः ये कोई विशेष राजनैतिक कार्य न कर सके। परन्तु अगले वर्ष इन्होंने कांग्रेस के दोनों विरोधी दलों में एकता करा कर एक ऐसी सर्वसम्मत योजना प्रस्तुत की जिसके फलस्वरूप भारत को मिंटो मार्ले सुधार मिले।

इसी वर्ष इन्होंने 'स्वराज्य संघ' की स्थापना की और लेखों और वक्तृताओं द्वारा उसका प्रचार किया। इनके व्याख्यानों पर शासकवर्ग ने फिर अपवाद किया और इनसे ज़मानत मांगी। परन्तु हाईकोर्ट में सरकारी अभियोग ठहर न सका। परिणाम यह हुआ कि जहां पहले लोग 'स्वराज्य' का नाम तक न लेते थे

अब उसका प्रचार करने लगे।

विलायत-यात्रा

सर वेलेंटाइन चिरोल साहिब ने अंग्रेज़ी में एक पुस्तक लिखी थी। उसका नाम था—भारत में अशांति। उसमें उसने भारत की अशांति का कारण तिलक जी और उनकी प्रचारित नीति को बताया था। इस पर इन्हें घोर आपत्ति थी! इसलिए इंगलैंड जा कर उस पर मुकद्दमा दायर करना चाहते थे। पहले तो इन्हें पासपोर्ट ही न मिलता था, परन्तु बहुत प्रयास करने पर जब वह मिल गया तो ये लन्दन को रवाना हो गये। प्रिवी-कौंसिल में अभियोग चला। दोनों ओर से अपनी अपनी पुष्टि में प्रमाण दिये गये। प्रिवी-कौंसिल की अदालत ने अपना निर्णय तिलक जी के विरुद्ध दिया। इस अभियोग में इनके कई लाख रुपये व्यय हुए थे। इससे इनके सिर पर ऋण का बहुत भारी बोझ आ पड़ा, जिससे ये चिन्तित रहने लगे।

विलायत-यात्रा का इनका एक और अभिप्राय भी था। ये वहां पर भारत-स्वतन्त्रता के लिए आंदोलन करना चाहते थे। वहां इन्होंने लेबर-पार्टी के कई मुख्य कार्यकर्ताओं से परिचय प्राप्त किया और उनके सहयोग से कई स्थानों पर वक्तृताएं कीं और छोटी छोटी पुस्तकाएं छपवाकर बँटवाईं। इससे वहां की जनता पर बहुत प्रभाव हुआ। जो इंगलैंड-निवासी पहले भारतीय राजनैतिक दशा से नितान्त अनभिज्ञ थे इनके प्रचार से उन्हें यहां की स्थिति का वास्तविक ज्ञान हो गया। तब से उन्होंने भारतीय मामलों में

रुचि प्रकट करना शुरू कर दिया। इस विषय में वहां के समाचारपत्र 'डेली हेरल्ड' से इन्हें विशेष सहायता मिली। ये अमरीका के प्रेज़िडेंट श्री विल्सन से भी मिले और उनके परामर्श से संधिकान्फ्रेंस को एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा। इस प्रकार विलायत यात्रा से इन्हें यद्यपि व्यक्तिगत हानि अवश्य हुई थी, पर भारत को विशेष लाभ पहुँचा था।

विलायत से भारत को लौटते ही ये अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वहां पर इन्होंने नवीन सुधारों के सम्बन्ध में जो मत प्रकट किया वही सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। इनका विचार यह था कि जो कुछ हमें दिया गया है उसे स्वीकृत कर लेना चाहिए और शेष मांगों के लिए आन्दोलन जारी रखना चाहिए।

तिलक जी की सारी की सारी आयु संघर्ष और जेलयातना में ही गुज़री थी। उन्हें सरकार से ही टक्कर लेनी नहीं पड़ती थी अपितु अपने देशवासियों से भी संघर्ष करना पड़ता था। इनके विरोधी दल के नेता श्री गोखले जी थे जो नर्म दल के कर्ता-धर्ता थे। इससे इनके स्वास्थ्य पर बहुत अहितकर प्रभाव पड़ा। इनकी शारीरिक अवस्था दिन-दिन बिगड़ती गई। तो भी सार्वजनिक कामों में इन्होंने कभी शिथिलता नहीं दिखाई। एक दिन भी इन्होंने अपने दिमाग़ और कलम को आराम नहीं दिया। इन्हें अधिक चिंता उस ऋण की थी जो इन पर चिरौल के मुकद्दमे में चढ़ गया था। ये चिन्तित रहते थे कि कहीं ऋण के बोझ को साथ लिये ही परलोक न जाना पड़े। परन्तु कुछ समय

बाद इनके उपासकवर्ग ने इन्हें तीन लाख की एक थैली भेंट की जिससे ये उस चिन्ता से मुक्त हो गये ।

कोलम्बो में इनकी चौसठवीं वर्षगाँठ मनाई जा रही थी । इन्हें भी वहां निमंत्रित किया गया था । जब वहां से ये लौट रहे थे तो मोटर में इन्हें सर्दी लग जाने से ज्वर आने लगा । भारतभर के गण्य और मान्य डाक्टरों और वैद्यों ने उसका उपचार किया पर सब निष्फल रहा । समस्त देश के सभा-समाजों में इनकी स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थनाएं की गईं, देवमन्दिरों में अर्चन किये गये। पर सब के सब निष्फल । इससे इनके मित्र और परिचित जन बहुत चिन्तित हुए और इनके अन्तिम दर्शन के लिए बंम्बई पहुंचे । सरदारगृह जहां इनका निवास ता, दर्शनाभिलाषी जनता से सदा भरा रहता था । महात्मा गांधी जी इन्हें मिलने को पंजाब से आये थे । इसी तरह और नेता भी दूर दूर से आकर इनसे मिले । अन्त में ३१ जुलाई, सन् १९२० के दिन ये महाराष्ट्र-केसरी परमधाम को प्रयाण कर गये । इस समाचार के पहुँचते ही देशभर में कुहराम मच गया।

तिलक जी की मृत्यु रात में हुई थी । रात को ही यह दुःखप्रद समाचार देश के कोने कोने तक पहुँच गया । प्रातः होते ही लाखों की भीड़ इनके निवासस्थान पर जमा हो गई । इतने में ज़ोर की वर्षा होने लगी, पर एक भी व्यक्ति अपने स्थान से नहीं टला । पूना और आस पास के शहरों से कई स्पेशल गाड़ियां चलाई गईं । जब इनकी अर्थी निकाली गई तो उसके साथ

लग भग पांच-छः लाख आदमी थे। महात्मा गांधी, लाला लाजपत-राय, श्री खापर्डे आदि नेता जो वहां पहले ही थे, अर्थी के साथ थे। जगह जगह पर इन पर पुष्पवर्षा हो रही थी। 'तिलक जी महाराज की जय' के नारों से आकाश गूंज रहा था। शव के साथ लगभग पचास भजनमंडलियां थीं। लोगों ने उस पर रुपये लुटाये, स्त्रियों ने पुष्पवर्षा की। इस प्रकार इनका शव कई घंटों की धीमी चाल से चौपाटी में ले जाया गया। वहीं पर चंदन की चिता में इनका दाह किया गया।

जिस दिन इनकी मृत्यु हुई थी उसी दिन महात्मा गांधी असहयोग-आंदोलन आरंभ करने वाले थे। उन्होंने इस शोक के हेतु उसे स्थगित कर दिया।

जब इनकी मृत्यु का समाचार भारत के लोगों तक पहुँचा तो वे शोक के कारण पागल से हो गये। सभा-समाजों के विशेष अधिवेशनों में शोकप्रस्ताव पास किये गये। बड़े बड़े शहरों में सारा दिन कारोबार बंद रहा।

आज लोकमान्य हमारे बीच में नहीं हैं, परन्तु इनकी आत्मा अब भी हमें मार्ग-प्रदर्शक का काम दे रही है! इनके विचार अब भी लोगों के हृदयों में स्थान पाये हुए हैं। देशसेवा की जिस सरणी को इन्होंने चलाया था, उसपर चल कर हज़ारों नवयुवक अपना जीवन सफल कर चुके हैं और कर रहे हैं। इनके उद्देश्य की सफलता, इनके आचरण की दृढ़ता, इनकी त्याग-युक्त और तपोमयी साधना हमारे सामने अब भी उच्च आदर्श हैं।

तिलकजी की शिक्षा उस समय समाप्त हुई थी जब भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा बहुत कम प्रचरित हुई थी। इस स्थिति में यदि ये चाहते तो अपने पल्ले के दूसरे मनुष्यों की तरह धन और वैभव पाकर समाज में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर सकते थे। परन्तु ये इन क्षुद्र सांसारिक भावों से बहुत ऊंचे थे। इनके जीवन का उद्देश्य उत्सर्ग था।

लोकमान्य महा पंडित थे, परन्तु इनकी सफलता इनके पांडित्य के कारण नहीं हुई, बल्कि इस कारण से हुई है कि इन्होंने इस पांडित्य को मातृभूमि-सेवा के लिए किस प्रकार व्यवहृत किया है। ये गीता में निर्दिष्ट निष्काम कर्म के अनुयायी थे। इनका जीवन शक्ति, साहस और वीरता के संमिश्रण का अपूर्व नमूना था। इनके मार्ग में कठिनाइयों का तांता सा लगा रहता था परन्तु इन्होंने कभी अपना पथ नहीं छोड़ा। ये कहा करते थे कि जीवन में मनुष्य को ज्यों ज्यों अधिकाधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है त्यों त्यों वह और भी उज्ज्वल और ध्येयप्राप्ति में दृढ़तर होता जाता है। यही इनकी उन्नति का रहस्य था।

आज तिलक जी यहां नहीं हैं, परन्तु इनके विचार और व्यक्तित्व वैसे ही हमारे साथ हैं। जीवनकाल में ये महान थे, परन्तु मृत्यु के बाद ये और भी ऊंचे पद पर पहुंच गये हैं। जीवन में ये हमारे साथ थे, अब ये हमारे हृदयासन पर हैं। ये हमारे अमर हृदयसम्राट् हैं।

लोकमान्य के कुछ विचार

१—महाभारत में लिखा है कि यहां तो श्रीकृष्ण जी संधि के लिए कौरवों के पास गये थे और वहां कौरव और पांडव दोनों ही युद्ध के लिए सैन्य-संग्रह कर रहे थे कि यदि संधि न हुई तो युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। बस यही राजनीति है।

२—हमारे काम-काज के प्रबन्ध का अधिकार हमारे ही हाथ में रहे, इसी को स्वराज्य कहते हैं।

३—ध्येय-सफलता के लिए हमें सबसे पहले स्वावलंबी, फिर दृढ़निश्चयी और अन्त में आत्मत्यागी होना चाहिए।

४—हमें गीता से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य को इस संसार में कर्म करना चाहिए। चाहे किसी ने अपने ज्ञान वा भक्ति से भी ईश्वर को पा लिया हो तो भी उसे संसार में रह कर कर्म करना ही चाहिए।

५—सब को सुबह-शाम, उठते-बैठते, सदैव यही प्रार्थना करनी चाहिए कि ईश्वर मुझे अन्याय से संग्राम और अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए शक्ति दे।

६—अपने घर का आप प्रबन्ध करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई दूसरा उसका तब तक ही अधिकारी हो सकता है जब तक हम नाबालिग़ या पागल हों।

७—अब हमें यह बताने की ज़रूरत नहीं कि कठोर और कंटकमय मार्ग आप लोगों के सामने है। आप लोग उसे निश्चल होकर साहस से पार कीजिये। इसका पार करना कठिन है, अतः वह पार करने योग्य है। मूल्यवान वस्तुएं कठिनाई से प्राप्त होती हैं और जो सहज में प्राप्त हो जाती हैं वे मूल्यवान नहीं होतीं।

८—जिस राष्ट्र में आगे बढ़ने के लिए क्षेत्र खुला है, अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता है, वहीं अच्छे गुणों की वृद्धि होती है।

९—चाहे धर्म हो और चाहे राजनीति, सभी में चित्त की दृढ़ता की आवश्यकता होती है। चित्त की दृढ़ता साहस बिना प्राप्त नहीं होती।

१०—कठिनाइयों से डरना मानों मनुष्यता से हाथ धोना है। कठिनाइयां तो हमें बहुत लाभ पहुँचाती हैं।

११—जब तक तुम कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं, तब तक तुम्हें कुछ नहीं मिल सकता ।

१२—जैसे एक अधिकारी के चले जाने पर दूसरा अधिकारी उसका स्थान ग्रहण कर लेता है और वही कार्य करने लग जाता है, वैसे ही एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के चले जाने पर दूसरे व्यक्ति को उसका कार्यभार उठा लेना चाहिए ।

१३—यह सर्वसम्मत है कि भारतवर्ष की उन्नति तब होगी जब मातृभाषाओं का खूब प्रचार होगा ।

१४—हम अपने देश के मनुष्यों पर अपनी भाषा द्वारा जितना प्रभाव डाल सकते हैं उतना किसी विदेशी भाषा द्वारा नहीं ।

१५—जिस देश के हाथ में अपने देश को शिक्षित करने की बागडोर नहीं उसकी सामाजिक, राजनैतिक और आचरण-सम्बन्धी उन्नति नहीं हो सकती।

१६—यदि तुम देश को एकसूत्र में बांधना चाहते हो तो देश-भर में एक राष्ट्र-भाषा का प्रचार करो ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रारम्भिक

श्री रवीन्द्रनाथ जी ठाकुर हमारी भारतमाता के उन पुत्ररत्नों में से हैं जिनके कारण ऐसी हीन दशा में होते हुये भी यह अपना सिर संसार में ऊंचा उठाये हुए है । प्राचीन समय से लोग भारत को सब देशों का अग्रणी मानते आये हैं । यहां से सभ्यता और शिक्षा की दिव्य ज्वाला को पाकर दूसरे देश अपना अंधकार मिटाते रहे हैं । इस प्रकाश के देने वालों में जहां प्राचीन काल में हमारे तत्त्वदर्शी ऋषि और महात्मा थे वहां वर्तमान युगमें विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रवीन्द्रनाथ, गांधी आदि महापुरुष हैं । ऐसे ही कुछ भव्य पुरुष अपने पूर्वजों की कीर्तिपताका को समय समय पर ऊंचा करते रहते हैं ।

वर्तमान युग के कुछ पिछले वर्षों में बाबू रवीन्द्रनाथ के कारण देश और विदेशों में ज्ञान और सत्य के तत्त्व का प्रचार हुआ है । आपकी कविताएं हम लोगों और अनन्त के मध्य में पड़े हुए

आवरण को उठा कर हमें उसका दर्शन कराती रही हैं। आपके लेखों ने संसार में जागृति की नवीन लहर चला दी है।

रवीन्द्र जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आप केवल कविता और गीता-रचना में ही सिद्धहस्त नहीं थे अपितु गल्प, उपन्यास और फुटकर निबन्धों की रचना में भी आपकी लेखनी निर्बाध चलती थी। आपकी रचनाओं का प्रत्येक शब्द सार्थक और प्रत्येक भाव हृदयतलस्पर्शी है। भारत में कविता का स्थान सहस्राब्दियों से सर्वोच्च रहा है। यहीं पर आदिकवि वाल्मीकि और व्यास जी ने जन्म लिया था। कवि शिरोमणि कालिदास और भवभूति की जन्मदायिनी भी यही पवित्र भूमि है। ऐसे देश में यदि रवीन्द्र बाबू उत्पन्न हुए हैं तो यह कोई विचित्र घटना नहीं हुई है, अपितु विधाता ने प्राचीन और अर्वाचीन समय की शृंखला को जो एक तरह से टूट गई थी, फिर से जोड़ दिया है।

कवीन्द्र की कविताओं द्वारा हमें ईश्वर का साक्षात् होता है, हमारे जीवन-तत्त्व की गूढ़ ग्रंथियां खुलती हैं और हमारे सामने उच्च आदर्श स्थापित होते हैं। जैसे कालिदास की शकुन्तला से, वाल्मीकि की रामायण से और अन्य ऋषियों के उपनिषद् ग्रंथों से भारत का यश योरप के कोने कोने तक व्याप रहा है, उसी तरह महर्षि रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' से भी यह देशदेशान्तर में विस्तृत से विस्तृततर हो रहा है।

प्रत्येक देश की अपनी अपनी विशेषता होती है। जहां हमारे देश का ध्येय आध्यात्मिक उन्नति रहा है, वहां पाश्चात्य देशों के

निवासी प्रकृति के उपासक रहे हैं? उन लोगों का जीवन हलचल से भरा रहता है और उनके जीवन का प्रत्येक क्षण संघर्षमय रहता है। इससे उन लोगों के मन में शान्ति नहीं होती। शान्ति के लिए वे तरसते फिरते हैं क्योंकि संघर्ष और शान्ति में स्वाभाविक वैर है। परन्तु जब से उन्होंने भी रवीन्द्रनाथ जी की कविताओं और लेखों का रसपान किया है तबसे उनकी आत्माओं को भी शान्ति मिली है। इसके लिए उन्हें आपका कृतज्ञ होना चाहिए। आपके गीतों से एक तरह का आनन्दामृत-प्रवाह बहता है, उसे जो भी पान करता है उसका मन शांत हो जाता है।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी की रचनाओं का, विशेष कर गीताञ्जलि का अनुवाद संसार की सब मुख्य मुख्य भाषाओं में हो चुका है। परन्तु वास्तविक रसास्वाद तभी प्राप्त होता है जब कवि की अपनी भाषा में उसे पढ़ा जाय, क्योंकि जो रसमाधुरी और सच्ची भाव-व्यञ्जकता लेखक के अपने शब्दों में रहती है, वह अनुवाद में नहीं मिल सकती। इसी लिए कई लोगों ने वंग-भाषा को सीखा है और आपकी कविताओं में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का साक्षात् दर्शन किया है—अर्थात् सचाई का कल्याणप्रद और सुन्दर रूप देखा है।

आपकी रचनाओं की तरह आपकी भव्य आकृति भी चित्ताकर्षक थी। देखने में आप ऋषियों की तरह मालूम होते थे। लंबा शरीर, गोरा रंग, गम्भीर और ज्योति से भरी हुई आंखें, घुंघराले और लम्बे बाल, ऋषि-मुनियों की तरह लम्बी दाढ़ी और

सुन्दर और शान्त मुखाकृति—इन सब से आपके हृदय की शान्ति और पवित्रता व्यक्त होती थी, और जो भी आपके सम्पर्क में आता था, वह प्रभावित हुए बिना न रहता था। आपकी बोल-चाल, दूसरों से व्यवहार का ढंग, वेषभूषा की सादगी इस प्रकार की थीं। एक अंग्रेज़ी लेखक के शब्दों में—रवीन्द्रनाथ में इतनी शान्ति और स्थिरता थी कि वे लंदन-जैसे कोलाहलपूर्ण नगर के किसी मकान के कमरे के वायुमंडल को शान्त और सुस्थिर बना सकते थे। समझने की बात है कि ऐसी शान्ति तभी सम्भव हो सकती है जब कि मनुष्य का हृदय अनन्त के भावों से पूर्ण हो और अक्षय सुख और शान्ति का आगार हो। रवीन्द्र जी का हृदय ऐसा ही था और इसी से जहां कहीं भी ये होते थे वहां शान्ति और प्रेम की वर्षा सी हो जाती थी।

वंश-परिचय

रवीन्द्रनाथ का जन्म कलकत्ते के एक विख्यात वंश में ६ मई, १८६१ के दिन हुआ था। कलकत्ते के जोड़ासाको मुहल्ले का ठाकुर वंश बहुत प्रसिद्ध है। यह वंश विद्या और धन—दोनों से भरपूर था। यह कहावत है कि सरस्वती और लक्ष्मी का निवास एक जगह नहीं होता, परन्तु ठाकुर वंश इसका अपवाद था। इस पर दोनों देवियों की कृपा थी। इस वंश के द्वारा बंगाल में काव्य-कला और दूसरी ललित कलाओं का बहुत प्रचार हुआ है। ठाकुर जी जहां स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार थे,

वहां आपके दूसरे भाई और सम्बन्धियों ने भी किसी न किसी कला में विशेष नाम प्राप्त किया हुआ था। आपके भाइयों में द्विजेन्द्रनाथ उच्च कोटि के साहित्यवेत्ता और कवि थे, और ज्योतिरिन्द्रनाथ संगीत में निपुण थे। आपके भानजों अवनीन्द्रनाथ और गगनेन्द्रनाथ का नाम चित्रकला-क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध है।पुरुष ही नहीं, इस वंश की स्त्रियां भी बहुगुणसंपन्ना रही हैं। थोड़े में यह कि बंगाल ने जो उच्च पद साहित्य, संगीत, नाट्य और चित्रकला में प्राप्त किया है उसका बहुत सा श्रेय ठाकुर-घराने को है।

ठाकुर रवीन्द्रनाथ के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर एक धनसम्पन्न व्यक्ति थे। परमात्मा ने जैसे उन्हें धन दिया था उसीके अनुकूल उन्हें दयाशील हृदय भी दिया था। आवश्यकता को लिये जो भी व्यक्ति उनके पास आता था खाली-हाथ कभी न लौटता था।

द्वारिकानाथ के पुत्र श्री देवेन्द्रनाथ थे। वे ही इस चरित के नायक श्री रवीन्द्रनाथ के पिता थे। उन्हें लोग 'महर्षि' कहते थे और वे थे भी सचमुच महर्षि ही। महर्षियों के सारे गुण उनमें विद्यमान थे। जितने वे विद्वान् थे उतने ही सच्चरित्र भी थे। जो भी उनके संपर्क में आता था उनपर मुग्ध हो जाता था।

मृत्यु के समय द्वारिकानाथ ठाकुर लगभग एक करोड़ का ऋण छोड़ गये थे। पिता के ऋण को चुकाना देवेन्द्रनाथ ने अपना कर्तव्य समझा। इधर एक करोड़ का ऋण था उधर सत्तर

लाख के लग भग लोगों से लेना भी था। इन्होंने सब महाजनों को बुलाकर उनके सामने अपनी स्थिति प्रस्तुत कर दी और जो धन उनका अपना था, जिस पर महाजन अधिकार नहीं कर सकते थे उसे भी उनके हवाले कर देने का निश्चय किया। इसके साथ ही उनकी उंगली में एक बहुमूल्य हीरे की अंगूठी थी, उसे भी उतार कर दे दिया। इनकी ऐसी सचाई और ऋण चुकाने की तत्परता ने उन महाजनों को मुग्ध कर दिया और आर्द्र होकर उन्होंने उनकी सम्पत्ति को स्वीकार नहीं किया और उन्हें कहा कि आप ज़मींदारी को चला कर जो धन प्राप्त करें उससे हमारा ऋण धीरे धीरे चुकाते जायं। बाबू देवेन्द्रनाथ ने उनकी यह बात मान ली और ज़मींदारी का ऐसा सुप्रबन्ध किया कि कुछ ही समय में सारा ऋण ही न उतर गया अपितु उसमें से लग भग बाईस लाख का दान भी दिया गया। उनके पिता ने मरने से पूर्व किसी संस्था को एक लाख दान देने का वचन दिया था। उनकी मृत्यु के बाद उस संस्था के अधिकारियों ने उनसे एक लाख रुपये माँगे। उस समय उनकी आर्थिक दशा बहुत बिगड़ी हुई थी। फिर भी उन्होंने पिता जी के प्रण को पूरा करने के निमित्त एक लाख रुपये दे दिये।

महर्षि देवेन्द्रनाथ को एकान्तवास बहुत प्रिय था। हिमालय के शिखिर पर निर्जन बनस्थली पर जाकर वे ईश्वराराधन किया करते थे। परन्तु गृहस्थ-धर्म का पालन भी वे पूरी तरह से करते थे। उनकी अनुपस्थिति में भी घर के काम-काज और प्रबन्ध में कमी

शिथिलता नहीं होने पाती थी। उनका जीवन उस कमल के समान था जो जल में रह कर भी जल से लिप्त नहीं होता। वे गृहस्थ में रह कर भी उसके बन्धनों से निर्मुक्त थे। वे भारतीय आदर्श के मूर्तिमान उदाहरण थे। जिस वंश में द्वारिकानाथ और महर्षि देवेन्द्रनाथ जैसे पुरुषरत्न हों वह वंश कैसा ऊंचा होगा ! इसी यशस्वी वंश में बालक रवीन्द्र का जन्म हुआ था। जिस उद्यान में तरह तरह के सुगन्धित फूल खिले हों, वहां एक दूसरे के सौरभ के आदान-प्रदान से सभी उद्यान की शोभा और सौरभवृद्धि होती है। द्वारिकानाथ और महर्षि देवेन्द्रनाथ की कीर्ति से ठाकुर वंश पहले ही अतिविख्यात था, परन्तु देवेन्द्रनाथ के गुणों के कारण इसकी कीर्ति और भी बढ़ गई। इसका नाम देश-देशान्तर में प्रसिद्ध हो गया।

बचपन

रवीन्द्रनाथ बचपन में ही मातृवात्सल्य से वंचित हो चुके थे। आपके पिता को एकान्तवास प्रिय था, अतः पिताकी गोद और स्नेह भी आपको बहुत कम मिलता था। छोटे छोटे समवयस्क बालकों के साथ खेलने में जो आनन्द मिलता है वह भी आपको प्राप्त न था, क्योंकि आप पर नौकरों की बड़ी देख-रेख थी, जो आपको घर से बाहिर पैर भी न धरने देते थे। इसलिये खिड़की के पास बैठे ही आप इधर उधर देखा करते थे। मन का धर्म है कि यह निश्चल नहीं रह सकता। कुछ न कुछ करता ही रहता है। इसी प्रकार अकेले बैठे भी आप पेड़-पौदों, पृथ्वी-आकाश, वायु-वर्षा आदि प्राकृतिक

पदार्थों का निरीक्षण करते रहते थे। आपने लिखा है—'मुझे स्मरण है कि मैं आरम्भ से ही प्रकृति का उपासक रहा हूँ। जब आकाश में उमड़े हुए बादलों को देखता तो आनन्दविभोर हो मोर की तरह नाचने लगता। मुझे प्रकृति से प्रगाढ़ प्रेम रहा है, वह एक प्रेमपूर्ण सहचर की तरह मेरे साथ रहती और नित नये नये सौन्दर्य-भंडार को मेरे सामने खोलती।" फिर एक जगह लिखा है—"शरद ऋतु के प्रभात में जब मेरी आंख खुलती तो तुरन्त मैं बिस्तरा छोड़ कर वाटिका में पहुँच जाता। उस समय मुझे मालूम होता कि ओस-कणों से भीगी हुई पत्तियां मुझे हाथ पसार कर बुला रही हैं। सूर्य की नवीन किरणों से चमचमाता हुआ सुकोमल प्रभात नारियल के कम्पायमान पत्रों द्वारा मेरा स्वागत कर रहा है। प्रत्येक दिन प्रकृति अपनी मुट्ठी बन्द कर लेती और हंस कर मुझ से पूछती—"इस में क्या है।"

किस बालक ने प्रकृति के पदार्थों को नहीं देखा? किसने हंसते हंसते फूल नहीं तोड़े? किसने फूलों पर बैठी तितलियों को नहीं छेड़ा? किसने बादल की गरजन नहीं सुनी? किसने प्रभात की सुनहली किरणा का अवलोकन नहीं किया? किसने संध्या के समय पश्चिम की लालिमा को नहीं देखा? किसने चिड़ियों की चहचहाट को नहीं सुना? सबने देखा है, सुना है और रोज़ देख सुन रहे हैं, परन्तु रवीन्द्र की आंखों से और कानों से, केवल रवीन्द्र ही ने देखा और सुना है। आपके पास जो कल्पना का भंडार था वह किसी और के पास नहीं था। सेव को गिरते

न्यूटन ने भी देखा था और औरों ने भी कई बार देखा होगा। परन्तु न्यूटन की प्रतिभा ने इसी दृश्य से वह सिद्धान्त खोज निकाला था जो मनुष्यमात्र को लाभ पहुँचा रहा है।

जैसे उपर कहा गया है कि बालक रवि को घर से निकलने की अनुज्ञा न थी। फिर भी घर में बैठे बैठे ही आपको प्रकृति की सुन्दरता को देखने और मनन करने का अवसर प्राप्त होता रहता था। यों तो आप पर सब नौकरों का शासन कड़ा था, परन्तु एक नौकर से आप बहुत तंग थे। वह खड़िया से एक मंडलाकार रेखा खींच कर उसके अन्दर ही आपको रहने का आदेश करता था। आप भी दंड के भय से उनकी आज्ञा की अवहेलना कभी न करते थे। खिड़की में बैठे आप नीचे के दृश्य को देखते रहते थे। खिडकी के नीचे एक तालाब था जिसकी एक ओर बरगद का पेड़ और दूसरी ओर केले का वृक्ष था। स्नान के लिए वहां कई मनुष्य आते और नहा धोकर चले जाते। प्रातः, मध्याह्न और सायं के दृश्य, उसी खिड़की में बैठे हुए आपकी दृष्टि से प्रतिदिन गुज़रते थे। इन दृश्यों का आगे चलकर रवीन्द्रनाथ की कल्पना पर बहुत प्रभाव पड़ा। प्रातः काल के बालरवि की सुनहली रश्मियों को, मध्याह्न के सूर्य के प्रखर प्रकाश को और सायंकाल के सूर्य की आग की लपटों से जलती हुई किरणों को देखकर आपके हृदय में नवीन नवीन भावों का उदय होता था। आपको घर से बाहिर न निकलने की आज्ञा से यह लाभ अवश्य हुआ था कि प्रकृति के खेलों को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से

देखने का आपको अभ्यास हो गया था।

शिक्षा

जब हम प्राचीन भारतीय शिक्षापद्धति की आजकल प्रचलित पद्धति से तुलना करते हैं तों हमें दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई देता है। कहां वे ऋषि-मुनियों के पवित्र आश्रम, जहां प्रकृति देवी पूरे यौवन में अपनी छटा दिखाती रहती थी और कहां आजकल की पाठशालाओं और स्कूलों के छोटे छोटे बन्द कमरे जहां ठूंस ठूंस कर भरे हुए विद्यार्थियों के दम घुट से जाते हैं। न इन्हें पवित्र और स्वच्छ वायु का और न सूर्य भगवान की स्वास्थ्यप्रद रश्मियों का लाभ हो सकता है। यदि आजकल के शिक्षकों की हम प्राचीन शिक्षक-समुदाय से तुलना करें तो विस्मित होना पड़ता है। उस समय विद्यार्थी गुरुकुल में ही आचार्य के पास बीस-पच्चीस साल तक निवास करते थे। आचार्य उनके पिता और वे उनकी सन्तान थे। आचार्य भी एसे जो विद्या के पारंगत, जिन्हें न पैसे का लोभ और न मान-सम्मान का। इसी वृत्ति से सतुष्ट वे अपना कर्तव्य निभाते चले जाते थे। उस समय भीषण दंड का आयोजन न था क्योंकि उसका अवलंबन ही न करना पड़ता था। परन्तु आज! आज बालकों का सारा समय घर के ही दूषित वातावरण में आचारभ्रष्ट बालकों के साथ खेलने-कूदने और सहवास में चला जाता है। पांच-छै घंटे मात्र उन्हें पाठशाला में रहना होता है। फिर पाठशालाओं का वातावरण भी तो कोई अच्छा नहीं होता।

अध्यापक अध्यापन को अपना कर्तव्य नहीं समझते अपितु नौकरी की शर्तमात्र को पूरा करते हैं। जितने पैसे मिलते हैं उतना नपा-तुला ये काम करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो बालक शिक्षित होकर इन स्कूलों से निकलते हैं वे न शिक्षा के वास्तविक अर्थ में शिक्षित होते हैं और न उदरपूर्ति के ही योग्य होते हैं। इन बातों का रवि बाबू पर बहुत प्रभाव पड़ा। इसलिए आपने आगे चलकर "शान्ति-निकेतन" में विश्व-भारती-जैसी आदर्श शिक्षण-संस्था की स्थापना की।

स्कूल की शिक्षा के आपको बड़े कटु अनुभव थे। इसलिए उस शिक्षा से आपने कोई विशेष लाभ नहीं उठाया। फिर भी पढ़ने-लिखने में आप किसी से पीछे न थे, क्योंकि अपने घर पर ही आपके शिक्षण का समुचित प्रबन्ध किया हुआ था। प्रातःकाल उठते ही पहले आपको एक पहलवान कुश्ती का व्यायाम कराता था। फिर आपको काव्य, गणित, पदार्थ विद्या और इतिहास आदि विषयों का अभ्यास करना पड़ता था। स्कूल से लौटकर आप जमनास्टिक के खेल खेला करते थे। रात को फिर ड्राइङ् और अंग्रेज़ी का अभ्यास करते थे। इससे स्पष्ट है कि आपके शरीर और दिमाग़ की पुष्टि साथ ही साथ होती रहती थी। इसलिए जहां आपका दिमाग़ इतना ऊंचा था वहां शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल था। आपकी शिक्षा एक प्रकार से सर्वांगपूर्ण थी। आपके घर का वातावरण भी बहुत उत्तम था। काव्य और संगीत आदि कलाओं की वहां सदा चर्चा होती रहती थी और अच्छी

अच्छी पुस्तकों का अभ्यास और उन पर विचार प्रकट किये जाते थे।

इधर आपकी शिक्षा इस ढंग से हो रही थी, उधर उस शिक्षा को व्यवहार में लाने का प्रबन्ध भी जारी था। बाल्यकाल में ही आपको सभा-सोसाइटियों में काम करना पड़ता था। आपके बड़े भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ ने एक स्वदेशी-सभा स्थापित की हुई थी। हर दोपहर को वह जुटती थी। आप भी उसके सदस्य थे। उस सभा का यह नियम था कि उसके प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ काम अवश्य करना पड़ता था।

उस सभा के आयोजन से वहां पर एक हिन्दू-मेला लगता था जिसमें देशी शिल्प और व्यायामों का प्रदर्शन होता था। आपको उस मेले के आयोजन में बहुत भाग लेना पड़ता था, इसके साथ ही आपने सोलह साल की उम्र में ही "भारती" जैसी उच्च पत्रिका में लेख लिखने शुरू कर दिये थे। आपका सर्वप्रथम लेख 'कवि का स्वप्न' निकला था। आपके लेख इतने उच्च कोटि के होते थे कि उनके कारण 'भारती' की ग्राहक-संख्या बहुत बढ़ गई।

रवीन्द्रनाथ के पिता प्रायः हिमालय के रमणीय स्थानों में निवास किया करते थे। एक दिन वे आपको भी साथ ले गये। उस समय रेलगाड़ी में बैठने का आपका पहला ही अवसर था। हिमालय के भव्य दृश्यों को देखकर आप मुग्ध हो गये। उसके बर्फ से दबे हुए उत्तुङ्ग शिखर, उन शिखरों से गिरते हुए जल-प्रपात, जल के निर्मल स्रोत और उनमें बहते और कल्लोलें करते हुए तरह तरह

के जल-पत्ती, प्रकृति देवी की उन्मुक्त छटा, ऊंचे और घने वृत्त और उनके साथ लिपटी हुई लताएं, हज़ारों रंगों के फूल और उनके सौरभ से मिश्रित वायु का संचार, कहीं उछलते कूदते हरिण और कहीं वृत्तों की टहनियों में आंखमिचौली खेलते वानरगण—इन सब दृश्यों को देखते देखते आप अपनी सुधबुध भूल से जाते। ये ही दृश्य आपके दिमाग़ में अंकित होते गये और आगे चलकर कविता के रूप में फूट निकले ।

इस अन्तर में रवीन्द्र बाबू को बोलपुर में जाने का संयोग हुआ । वहां आप खुले मैदान में खेलते और स्वच्छन्द वायु की तरह विहरण करते, क्योंकि अब आपके ऊपर नौकरों का कड़ा पहरा न था और न कोई और बाधा थी । बोलपुर से चल कर आप अपने पिता के साथ साहबगंज, दानापुर, इलाहाबाद और कानपुर आदि स्थानों से होते हुए डलहौज़ी गये और वहाँ कुछ देर रह कर कलकत्ता लौट आये ।

विलायत-यात्रा

रवीन्द्र बाबू की उम्र अब सोलह साल की हो गई थी। आपके ही एक मंझले भाई सत्येन्द्रनाथ सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके अहमदाबाद में जज नियुक्त थे । उनके कहने से आप के पिता का आपको शिक्षा के लिए विलायत भेजने का विचार हो गया । पहले कुछ दिन आप अपने भाई के पास अहमदाबाद में रहे। इसके बाद २० सितम्बर, सन् १८७७ को

इंगलैंड को चल पड़े। आपके सम्बन्धी चाहते थे कि आप विलायत में जाकर कोई न कोई उपाधि प्राप्त करें, परन्तु आप उपाधि प्राप्त करना वास्तविक शिक्षा का अंग न समझते थे। इसलिए एक वर्ष बाद ही आप ४ नवम्बर, १८७८ को घर लौट आये।

England चलने से पूर्व इंगलैंड के विषय में आपकी विचित्र भावनायें थीं। आप को कल्पना थी कि इंगलैंड साहित्य का केन्द्र होगा, यहाँ का वातावरण शान्त और पवित्र होगा। परन्तु वहां जाकर आपने देखा कि जीवन का संघर्ष जितना उग्र वहां है उतना कहीं और नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का एक एक क्षण आजीविका के लिए संघर्ष करते गुज़र रहा है। परन्तु उन लोगों के जीवन का एक और भाग भी था जिसका आपके मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वहां के निवासियों की स्वाधीन जीवन-यात्रा, उत्साह और इमानदारी को देख कर आप बहुत प्रसन्न हुए। वहां पर कोई याचक भी किसी से कुछ नहीं मांगता, वह सड़क के किनारे केवल खड़ा रहता है। उसके रंग-ढंग से ही मालूम हो जाता है कि वह याचक है। एक दिन ऐसा ही एक याचक सड़क के किनारे खड़ा था। उसे देख कर आपका हृदय दयार्द्र होगया। आपने उसे एक पौंड दिया और चले गये। कुछ ही क्षण बाद वह याचक भागता भागता आया और आप से कहने लगा—'शायद आपने भूल से मुझे अशर्फी दे दी है।' इसी प्रकार की एक और घटना भी हुई। एक स्टेशन के कुली को आपने एक पेनी की जगह आधा पौंड दे दिया। जब आप गाड़ी पर सवार हो गये और गाड़ी छूटने को थी तो वह कुली भागता भागता आया और

आप से कहने लगा—'आपने भूल से मुझे आधा पौंड दे दिया है।' वहां की ऐसी बातों का आपपर चिरस्मरणीय प्रभाव रहा।

इंगलैंड से लौट कर आपने साहित्यसेवा शुरू कर दी। इस समय यद्यपि आपकी उम्र छोटी थी तो भी आपने बहुत ऊंची श्रेणी के ग्रंथ लिखे थे। 'करुणा' आपका सर्वप्रथम उपन्यास और 'रुद्रचन्द्र' कविताग्रंथ हैं जो इन्हीं दिनों के लिखे हुए हैं। इनके सिवा कई और उत्तम ग्रंथ और फुटकर लेख भी आपने विलायत जाने से पूर्व लिखे थे। ज्यों ज्यों आपकी उम्र बढ़ती गई त्यों त्यों आपकी कविताशक्ति में भी वृद्धि होती गई।

आपकी रचनाओं पर तीन प्रकार के प्रभाव अङ्कित नज़र आते हैं। पहला प्रभाव प्रकृति की सुन्दरता का है। जो प्राकृतिक दृश्य आपने हिमालय के बोलपुर में और अपने ही बंगाल में देखे थे, उनका प्रभाव आपकी कविताओं में स्पष्ट नज़र आता है।

दूसरा प्रभाव बंगला-साहित्य का है। चंडीप्रसाद और विद्यापति के गाने, चैतन्य महाप्रभु के भक्तिरस से सराबोर पद्य उस समय के वैष्णव कवियों की भक्तिपूर्ण आध्यात्मिक रचनाएं, इसी प्रकार शक्ति-उपासक भक्तों के सीधे-सादे पद्य—इन सब की आपकी रचनाओं पर छाप दिखाई देती है।

तीसरा प्रभाव आपकी रचनाओं पर पश्चिमी साहित्य और संस्कृति का पड़ा है। परन्तु आपकी कृतियों पर दूसरों का प्रभाव रहते भी जो कुछ आपने लिखा हैं वह सोलह आने आपका ही है। उस पर आपके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है।

रवीन्द्रनाथ जहां कवि थे वहां अच्छे गायक भी थे। अपनी कविताओं को सुमधुर स्वर में ऐसे दत्तचित्त हो गाते थे कि सुनने वाले मुग्ध हो जाते थे। एक बार आपके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ने आपका गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। आज्ञा पाते ही आपके बड़े भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ ने हारमोनियम बजाना शुरू कर दिया और आप गाने लगे। आपका गाना सुनकर महर्षि गद्गद हो गये और आपकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। कहने लगे 'यदि इस देश का राजा बंगला भाषा से परिचित होता तो वह अवश्य यह गाना सुन कर तुम्हें पुरस्कार देता। राजा तो क्या देगा, लो मैं ही तुम्हें इनाम देता हूं।' यह कह कर उन्होंने पांच सौ रुपये का चेक रवीन्द्रबाबू के नाम काट दिया। पिता जी की प्रशंसा के कारण आपका उत्साह और भी बढ़ गया। आपकी रचनाओं की धारा और भी ज़ोर से बहने लगी। सान्ध्यसंगीत, प्रभातसंगीत, वाल्मीकिप्रतिभा, केलिमृगया और कई अन्य कृतियां एक के बाद दूसरी प्रकाशित होने लगीं।

रवीन्द्र बाबू का विवाह दिसम्बर, सन् १८८३ में ही हो गया था। इस विवाह से आपके दो पुत्र और एक कन्या हुई थी। सन् १६०२ में आपकी स्त्री का देहान्त हो गया जिससे आपके हृदय पर गहरी चोट लगी। आपका बड़ा पुत्र रथीन्द्रनाथ अमरीका में शिक्षाप्राप्ति के लिये चला गया और छोटे लड़के और लड़की की देख-रेख आप स्वयं करते रहे। कुछ समय बाद आपका छोटा पुत्र और पुत्री भी आपको एकाकी छोड़ चल बसे। इनकी मृत्यु का आपके जीवन पर बहुत दुःखद प्रभाव पड़ा।

परन्तु आपने गीता के उपदेशों पर अमल करते हुए एक कर्मनिष्ठ योगी की तरह उस कष्ट को धैर्य से सहन किया।

जब आप तीस साल के थे और आपकी पत्नी का देहान्त नहीं हुआ था तो आपको पिताजी की आज्ञा मिली थी कि स्यालदह में रहकर ज़मीदारी का प्रबन्ध करो। यह आपके लिए एक नया कार्य-क्षेत्र था, अतः आपको सफलता में कुछ शंका थी। फिर भी पिता की आज्ञा थी, कैसे टाल सकते थे! परन्तु जब आप वहां गये तो उस स्थान की रमणीयता को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। पास ही वहीं पद्मा नदी बहती थी। उसने आपको विशेष आकृष्ट किया। उसी नदी की तरल तरंगों को आपने घर सा बना लिया। नाव में बैठकर आप जलविहार करते और वहीं उठते बैठते खाते-पीते, सोते और रचना करते। सायंकाल होते ही आप मैदान में टहलने को निकल जाते। उस समय पश्चिम के आकाश के दृश्य को देख कर आपके हृदय में अनेकों भावनायें उठती थीं। प्रकृति नटी के चित्ताकर्षक खेलों को देखकर आपका हृदय लहलहा उठता था और सारे शरीर में नई स्फूर्ति आ जाती थी। प्रातःकाल को जब पद्मा और उसके घाट पर ललनाओं को जल भरते, कपड़े धोते और स्नान करते देखते तो आपके मस्तिष्क में विचित्र बिचित्र भावों की लहरियां चलने लगती थीं। दोपहर में धान के छोटे छोटे पौदों को हवा के झकोरों में हिलते और जलजीवों को जलप्रसार में क्रीड़ा करते और कृषक-समुदाय को कृषिकार्य से निवृत्त होकर कुछ विश्राम करते देख कर आपकी कल्पनाएं अनेक रूप धारण किये

आपके सामने खड़ी हो जाती थीं। इस प्रकार सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य आपको उन्मत्त कर देते थे । आपने स्वयं कहा है— 'मैं चाहता हूँ कि जीवन के प्रत्येक सूर्योदय को समीपता से अभिवादन करूं और प्रत्येक सूर्यास्त को परिचित सुहृद की तरह विदा करूं', फिर लिखा है— 'जब मैं सायंकाल को दफ्तर से अपने नौकागृह को लौटता हूं तो पद्मा के तट पर 'सन्ध्या मेरी प्रतीक्षा करती रहती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे लिए एक प्रकार का सुन्दर शान्तभाव आकाश में छाया हुआ है। मेरे मानस और प्रकृति में अत्यन्त समीप का सम्बन्ध है, जिसे मेरे सिवा कोई नहीं जानता।'

इस प्रकार स्यालदह में सानन्द रहते हुए आपको कई साल बीत गये। पहले जहां आने से आपका मन संदेह से झिझकता था वहां उसे अब छोड़ने का नाम भी न लेते थे। ज़मींदारी के काम को चलाने में भी आपको पूर्ण सफलता मिली। आप खेती के ऐसे ऐसे साधनों को काम में लाये जिसमें उनकी उपज पहले से कई गुणा बढ़ गई। प्रायः कहा जाता है ज़मीदारों का अपनें किसानों से व्यवहार अच्छा नहीं रहता। परन्तु रवीन्द्रनाथ इसके अपवाद थे। आपका अपने किसानों से घर वालों का सा व्यवहार था, आपकी देखरेख में वे बहुत सन्तुष्ट थे। आप कहा करते थे-'इन असहाय, उपायहीन तथा अत्यन्त दुःखी एवं सरल किसानों और कुलियों को अपना आदमी समझने में मुझे सुख मालूम होता है, इन पर मेरी कितनी श्रद्धा है, मैं इन्हें अपने से कितना बढ़ कर

समझता हूं, यह इन्हें मालूम नहीं है।'

कवि-सम्राट्

रवीन्द्र नाथ की कविता-माधुरी का स्वर देश-विदेश में गूंजने लगा। वंगप्रदेश में ही नहीं, अपितु भारतवर्ष के दूसरे प्रान्तों में भी आपको रचनाओं का आदर होने लगा, उनके अनुवाद कई भाषाओं में प्रकाशित होने लगे। आपके नाटकों का रंगमंचों पर अभिनय होने लगा और गोरा और राजर्षि जैसे उपन्यास बहुत चाव से पढ़े जाने लगे। यही नहीं, आपकी रचनायें अंग्रेज़ी में अनूदित होकर पाश्चात्य देशों में भी पहुँचने लगीं। वहां आपका जितना आदर हुआ इतना पहले किसी प्राच्य लेखक का नहीं हुआ था। संसारभर की उच्चकोटि की पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं की समालोचना होने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि आप प्रान्त और देश की सीमाओं को उल्लंघन कर सार्वदेशीय कवि माने जाने लगे।

रवीन्द्र की रचनाओं में सब प्रकार के विषयों पर प्रकाश पड़ा दीखता है। जहां आपकी कविताओं में प्रकृति के सुन्दर चमत्कारों का वर्णन आता है वहां मानुषीय जीवन का कोई भी पहलू नहीं जिसे आपने अछूता रहने दिया हो। इसी प्रकार आपके नाटकों, गल्पों और उपन्यासों में भी राजनैतिक, समाजिक और आध्यात्मक विषयों की समस्याओं को सुलझाया गया है। कहते हैं सच्चे कवि सर्वद्रष्टा होते हैं। अतीत और

भविष्य के आवरण भी उनकी दृष्टि से कुछ भी ओझल नहीं रख सकते। रवीन्द्र बाबू ऐसे ही सर्वद्रष्टा कवि थे। जिन तथ्यों का आपने वर्णन किया है, वे शाश्वत तथ्य हैं।

सन् १९१२ में आपने फिर विलायत की यात्रा की। इस प्रसंग में आप इंगलेंड भी गये। वहां आपकी रचनाओं के द्वारा आपकी कीर्ति तो पहले पहुँच चुकी थी, परन्तु जब वहां के निवासियों ने भारत के प्राचीन ऋषियों के समान आपकी भव्य मूर्ति को देखा तो वे लोग मुग्ध हो गये। वहां पर आपने गीताञ्जलि का अंग्रेज़ी-अनुवाद जो आपने स्वयं किया था विद्वत्समाज के सामने रखा। प्रकृति के उपासक और सांसारिक संघर्ष में व्यग्र पाश्चात्य जगत् को प्राच्य प्रतिभा की यह अपूर्व देन थी। उन लोगों ने इनका विशेष समारोह से आदर किया। सन् १९१३ में नोबलप्राइज़ किसी साहित्यकार को मिलना था। गीताञ्जलि के प्रणेता श्री रवीन्द्र बाबू ही सर्व-सम्मति से इसके उपयुक्त समझे गये। यह प्राइज़ (पारितोषिक) एक लाख बीस हज़ार रुपये का है। यद्यपि धन काफी बड़ा है तो भी उसके मुकाबले में जो विश्वसंचारिणी कीर्ति का लाभ होता है उसके सामने यह तुच्छ है। इस आदर ने आपको कविसम्राट् पद पर पहुंचा दिया। संसार के कोने कोने से आपको प्रशंसा और बधाइयों के पत्र आने लगे। भारत के सम्राट् ने भी आपको 'सर' की उपाधि से विभूषित किया। कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने आपको 'डी-लिट' की उपाधि दी।

सन् १६२० में आपने फिर योरप की यात्रा की। जहां जहां आप गये आपका विशेष आदर किया गया। अमरीका में तो आपका आशातीत सम्मान हुआ। वहां से आप डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन गये, वहां के विद्यार्थियों ने दीपक जला कर आपका जलूस निकाला। स्वीडन में, जहां पर 'नोबल प्राइज़' दिया जाता है आपको कई अभिनन्दन पत्र दिये गये। बर्लिन में आपके व्याख्यान को सुनने के लिए उत्सुक जनता हज़ारों की संख्या में उपस्थित थी। यह ऐसा आदर था जो किसी ही भाग्यशाली व्यक्ति के भाग्य में होता है। फ्रांस के जगद्विख्यात आचार्य सिलम्यां लेवि महोदय ने एक व्याख्यान में आपकी बड़ी प्रशंसा की। जब आप व्याख्यान के पश्चात् लौटे तो कुछ लोगों ने झुक झुक कर आपके चरण छुए। फ्रांस में यह अभूतपूर्व बात थी।

कवि रवीन्द्रनाथ जी का जो इतना सम्मान हुआ था इसका कारण केवल उनकी लेखनी थी, जिसका चमत्कार उनकी रचना 'गीताञ्जलि' और 'साधना' में हुआ है। यह ऐसा सम्मान है जो बड़े बड़े सम्राटों। को भी अप्राप्य है। इससे साफ स्पष्ट है कि मानव-हृदय को वशीकरण का मुख्य साधन लेखनी के समान और कोई नहीं।

कुछ समय बाद आपको एशिया-खंड के कई देशों ने आमंत्रित किया। सबसे पहले आप चीन गये। वहां पर आपका ऐसा स्वागत किया गया जैसा कभी किसी महाराजा का भी न हुआ था। वहां से आप ब्रह्मदेश में पहुँचे। वहां की राजधानी रंगून में

विश्वविद्यालय की ओर से आपको अभिनन्दनपत्र दिया गया। रंगून से होकर आप मलाया द्वीप और जावा में गये इन सब देशों से भारत का प्राचीन सम्बन्ध था। कई शताब्दियां पूर्व ये देश भारत के उपनिवेश थे। आपने उन देशों से सदियों के टूटे हुए सम्बन्ध को फिर से जोड़ दिया। जापान में आपका सम्राट् की ओर से स्वागत किया गया।

इस प्रकार विश्व को साहित्यिक विजय करने के पश्चात् कवि-सम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वदेश भारत को लौट आये। यहां पर आपका जैसा स्वागत किया गया वैसा किसी भी दिग्विजयी सम्राट् के ही उपयुक्त था। आपके कारण भारत का मुख उज्ज्वल हो गया संसार को विश्वास होगया कि जहां पश्चिम पदार्थ-विज्ञान की विद्या में विश्व का अग्रणी है वहां भारत अध्यात्म-विद्या में नेता है। सहस्राब्दियां पूर्व यहां पर बड़े बड़े ऋषि, महर्षि उत्पन्न हुए थे जिन्होंने संसार को उपनिषद्-ग्रन्थ, दर्शन-ग्रंथ और रामायण आदि महाकाव्य दिये थे। वर्तमान काल में भी रवीन्द्र, विवेकानन्द और गांधी जी आदि युगानुकूल उपदेशों से संसार के अन्धकार को मिटाकर प्रकाशदान कर रहे हैं।

शान्तिनिकेतन (विश्व-भारती)

श्री रवीन्द्रनाथ ने भारत के प्राचीन आश्रमों और वहां की शिक्षाप्रणाली के विषय में बहुत कुछ पढ़ा था, साथ ही आपको वर्तमान प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली का भी परिचय था।

आप चाहते थे कि भारत में ऐसी शिक्षा-प्रणाली चलाई जाय जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य प्रणालियों के गुण विद्यमान हों। आपने एक लेख में लिखा है—'इन दिनों पूजा करने के लिए मन्दिरों की और किसी विशेष पूजाविधान की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में हमें एक ऐसे आश्रम की आवश्यकता है जहां प्रकृति के सौन्दर्य और मनुष्य के सुन्दर कार्यों में हृदय को आनन्दित करने वाला सामंजस्य पाया जाय। वही हमारा मन्दिर होगा, जहां वाह्य प्रकृति और मनुष्य की आत्मा मिलकर एक हो सकेंगी।' इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर आपने सन् १९०१ में एक आश्रम खोला था। धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ वह अब एक बहुत बड़ी शिक्षादायक संस्था बन गया है। इसे 'विश्वभारती' कहते हैं।

महर्षि देवेन्द्रनाथ के समय में बोलपुर के पास एक बहुत खुला मैदान था, जहां पर कुछ सप्तच्छद वृक्षों के सिवा और कोई पेड़ न था। एक बार महर्षि इसके पास से गुज़र रहे थे। उन्हें विश्राम के लिए सप्तच्छद वृक्षों की छाया का आश्रय लेना पड़ा। वहीं आपने ईश्वरोपासना की। उस स्थान की एकान्तता को देखकर आपके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि ईश्वर की उपासना के लिए यह स्थान अत्युत्तम है। फिर क्या था! थोड़े ही समय में वहां पर एक वाटिका और सुन्दर स्थान बन गया। एक सुनसान जंगल तपस्या के योग्य आश्रम में परिणत हो गया। महर्षि ने उसका नाम शान्तिनिकेतन रखा। उसे देखने के लिये दूर दूर से यात्री आने लगे।

महर्षि जी की मृत्यु के पश्चात् जैसे ऊपर कहा गया है रवीन्द्र-नाथ जी ने यहां पर 'विश्वभारती' विद्यालय स्थापित किया है। इससे इसकी ख्याति और भी अधिक हो गई है। दूर दूर के विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा लेते हैं। इस संस्था में दूसरी संस्थाओं की अपेक्षा कई विचित्रतायें हैं। यहां पर दूसरे स्कूल और कालिजों की तरह पक्के कमरे और बड़े बड़े हाल नहीं हैं, लड़कों की शिक्षा वृक्षों की छाया में होती है। यहां पर कोई मुख्य-अध्यापक नहीं है, प्रत्येक अध्यापक अपने अपने विषय के पाठन में स्वतन्त्र है। यहां पर लड़कों को शारीरिक दंड नहीं दिया जाता। अध्यापक और छात्रों में परस्पर इतना प्रेम है कि छात्र तन्मयता से अपना काम करते रहते हैं। अध्यापकों और छात्रों का व्यवहार कुटुम्बियों सा है, दण्ड का प्रश्न ही नहीं उठता।

शान्तिनिकेतन का कार्यक्रम इस तरह है—प्रातः चार बजे उठकर छात्र प्रथम अपने अपने कमरों को साफ करते हैं, पुनः हाथ मुंह धोकर खुले मैदान में व्यायाम करते हैं। इसके कुछ देर बाद स्नान कर ध्यान तथा पूजा आदि नैत्यिक कर्म करते हैं। इसके बाद सब एकत्र होकर ईश्वरोपासना करते हैं। तत्पश्चात् भोजन कर पाठशाला को जाते हैं और चार घंटे की पढ़ाई के बाद बारह बजे लौट आते हैं। इसके बाद दो बजे से पांच बजे तक पाठशाला में पाठन होता है। पाठशाला से आकर खेलें होती हैं। सायं को फिर वे ईश्वरोपासना के लिये एकत्र होते हैं। रात को सब एकत्र बैठकर कहानियां आदि सुनते और सुनाते हैं। कभी कभी रवीन्द्र

बाबू भी इस बैठक में भाग लेते थे। इस समय में कभी कभी संगीत, कभी कोई अभिनय और कभी कोई व्याख्यान हो जाता है। जब रात को साढ़े नौ बजते हैं तो छात्र भोजन समाप्त कर सो जाते हैं। यहां की प्रबन्धप्रणाली भी विचित्र है। छात्रों की अपनी ही एक सभा है जो प्रबन्ध करती है। यदि किसी से कोई अपराध हो जाता है तो उसके दंड का विधान भी यही करती है।

राजनैतिक विचार

श्री रवीन्द्र जी जिस पारिवारिक वातावरण में पले थे उसका सम्बन्ध राजनैतिक क्षेत्र से बहुत कम था। जैसे पीछे बताया गया है आपके बाप-दादा धन-सम्पन्न थे। सरकारी क्षेत्र में इनका बहुत आदर-सम्मान था। अतः बचपन से लेकर ही रवीन्द्र को किसी के भी सम्पर्क में आने नहीं दिया गया था। बड़े होकर भी आपकी प्रवृत्ति साहित्य-सेवा की ओर ही रही थी। इतनी बाधाओं के होते हुए भी आप-जैसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति प्रतिदिन हो रही घटनाओं से अनभिज्ञ कैसे रह सकते थे! कोई न कोई राजनैतिक घटना हर रोज़—घटती रहती थी। राजनैतिक स्वतंत्रता का आंदोलन शुरू था। तिलक, दादाभाई नौरोजी और महात्मा गांधी आदि नेता आंदोलन में भाग ले रहे थे। हर रोज़ नेता लोग जेल जाते थे और फिर छूट आते थे। इस प्रकार की सब घटनाएं जिन्हें आप रोज पढ़ते रहते थे किस तरह आपकी आत्मा को प्रभावित और आन्दोलित किये बिना रह सकती थी! आपने भी पत्रों में लिखना शुरू किया। उच्च उच्च नेताओं से आप

मिलने लगे। उनसे विचारों का आदान-प्रदान करने लगे। उनके विचारों से स्वयं प्रभावित होने लगे और अपने विचारों से उन्हें प्रभावित करने लगे। आप पर उनका रंग चढ़ने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि आप राजनैतिक विषयों में अधिकाधिक भाग लेने लगे। आपकी आत्मा देश की स्वतन्त्रता के लिये छटपटाने लगी। आपने लिखा है—'जहां किसी प्रकार का भय नहीं रहता और मन में सदैव ऊंचे विचार बने रहते हैं, जहां ज्ञान स्वतन्त्र है, जहां संसार संकीर्णता के कारण छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त नहीं हुआ है, जहां वचन सत्य के अगाध आकर से निकलते हैं, जहां सदैव ही पूर्णता को प्राप्त करने की चेष्टा होती रहती है, जहां विवेक की स्वच्छ धारा एक भाव से बहती रहती है, जहां तुझ से प्रेरित होकर मनुष्यों के मन और कर्म निर्विकार और उदार होते हैं, उस स्वतन्त्रता के स्वर्ग में, हे भगवन् ! मेरा देश उन्नत और जागृत हो।' स्वतंत्रता का कैसा उत्तम चित्र आपने खींचा है !

ठाकुर रवीन्द्रनाथ का चरित्र सब के लिये एक आलोकस्तम्भ है। आपकी दिग्दगन्तव्यापी उज्ज्वल कीर्ति को देख कर किसका चित्त आपका अनुकरण करने को उत्सुक न होगा ! प्रतिभा और उद्योग के बल मानव कहां तक पहुंच सकता है, आपका जीवन इसका निदर्शन है। आप इस युग की सच्ची भारतीयता के प्रतीक महापुरुष थे। आपने विश्व को भारत की उच्च संस्कृति और सभ्यता का सन्देश दिया है। आप ही के कारण भारत का

गौरव दूसरे देशों की दृष्टि में बढ़ा है और आपने पूर्व और पश्चिम को इतना समीप ला दिया है कि इनका भेदभाव मिट सा गया है।

अमृतसर के जलियाँ वाले बाग़ की दुर्घटना ने तो आपकी आत्मा को विचलित कर दिया था। इसके प्रतिवाद में आपने 'सर' की उपाधि का त्याग कर दिया और उस दिन से राजनैतिक मामलों में आप काफ़ी दिलचस्पी लेने लगे। महात्मा गांधी जब कोई नया राजनैतिक पग ऊठाते तो वे पहले आपसे परामर्श कर लेते। महात्मा जी आपको 'गुरुदेव' कहा करते थे। इसलिए जीवन के कुछ अन्तिम वर्षों में आप इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

दिनोंदिन आपकी आयु बढ़ रही थी और शरीर शिथिल हो रहा था। अतः आपने यात्रा करना छोड़ दिया। शान्ति-निकेतन में ही आपके समय का बहुत बड़ा भाग गुज़रने लगा। वृद्धावस्था के कारण आप रुग्ण रहने लगे। कुछ समय के बाद आपके रोग ने ऐसा भयंकर रूप धारण कर लिया कि बहुत उपचार करने पर भी शान्त न हुआ क्योंकि आपकी अवस्था जो इस समय अस्सी साल के ऊपर थी, बाधक थी। अन्त में अगस्त सन् १९४१ को भारत के साहित्यिक - शिरोमणि, विश्वकविसम्राट्, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर परमधाम को सिधार गये।

आपकी मृत्यु का समाचार क्षण में ही संसार के कोने कोने में फैल गया। जगह जगह शोकसभाएं होने लगीं। बड़े बड़े नगरों में कारोबार बन्द हो गया। सरकारी दफ्तर और अदालतें बन्द हो गईं। देश के बड़े बड़े नेता जो समाचार पाकर वहां पहुँच गये थे,

आपकी अर्थी के साथ थे। अर्थी को चन्दन की चिता पर रखा गया। आपकी आत्मा तो पहले ही परमात्मा की गोद में पहुँच चुकी थी, अब आपकी नश्वर देह भी अग्नि की धक-धक् करती हुई ज्वालाओं में दग्ध हो कर राख हो गई।

आपसे महापुरुष संसार की विभूतियां होते हैं, जिनका दर्शन युग में कभी एक बार ही होता है। ये ईश्वरीय दूत के रूप में संसार को किसी तथ्य का उपदेश देने आते हैं और अपना कर्तव्य निभा कर विदा हो जाते हैं।

ठाकुर रवीन्द्रनाथ इस समय हम लोगों में नहीं हैं, फिर भी रात दिन हमारे साथ हैं। जिन तथ्यों का प्रचार आप कर गये हैं, जिन अमर कृतियों को हमारे पास धरोहर रख गये हैं, वे अब भी पथभ्रष्टों को पथप्रदर्शन कर रही हैं, अशान्त हृदयों को शान्ति प्रदान कर रही हैं और तब तक करती रहेंगी जब तक संसार में माया है, मत्सर है, लोभ है, मोह है।

गुरुदेव पर हमें गर्व है, किसे न होना चाहिये ? आप मानवता के पुजारी थे और कृत्रिमता और दुर्गुणों के संहारक थे। मृत्यु से कुछ समय पहले आपने उसके संबंध में यह रचना की थी—

अवकाश पा चुका हूं, अब दो मुझे बिदाई,
मेरे समस्त भाई,
करता प्रणाम सबको लेने बिदा रुका हूँ।
तज कुञ्जिका भवन की, आत्मीयता सदन की,

केवल मधुर वचनहित मैं सामने झुका हूं ।
जो कुछ यहां लुटाया उससे अधिक कमाया,
रह साथ तुम सभी के अब खेल खा चुका हूं ।
अब प्रात हो रही है, यह रात खो रही है,
यह दीप जो भवन के तम में जला चुका हूं ।
आई पुकार मेरी, अब है न और देरी,
प्रस्थानहेतु यात्रा के पग बढ़ा चुका हूं ॥

गीतांजलि के कुछ गीतों का अनुवाद

(१)

इस छोटे से फूल को तोड़ लो और ग्रहण करो । देर न करो । मुझे भय है कि कहीं मुरझाकर यह धूल में न गिर पड़े ।

तुम्हारी माला में यह भले ही न गूंथा जाय, किन्तु अपने हाथ से छूकर इसका मान तो करो और तोड़ लो । मुझे भय है कि कहीं मुझे बोध होने से पहले ही दिन समाप्त होकर पूजा का समय ही न निकल जाय ।

(२)

इस जगत के उत्सव का निमन्त्रण पाकर मेरा जीवन सफल हुआ है, मेरी आंखों ने देखा है और कानों ने सुना है ।

इस उत्सव में वीणा पर बजाने का कार्य मुझे मिला था। इसे मैंने यथाशक्ति किया।

अब मैं पूछता हूं क्या आख़िर वह समय आ पहुँचा है जब मैं तुम्हारे अन्दर जाकर तुम्हारे दर्शन करूं और अपना नीरव प्रणाम समर्पित करूं ?

(३)

बंदी, बताओ इस न टूटने वाले ज़ंजीर को किसने बनाया है ?

बंदी ने उत्तर दिया—'मैंने ही', मैंने इसे बड़े यत्न से बनाया है। मैंने सोचा कि अपने प्रबल प्रताप से सारे संसार को इस जंजीर में बंदी कर दूंगा और फिर मैं अकेला ही यहां स्वतन्त्र रहूंगा। बस, रात दिन मैंने आग और हथौड़े की निर्दय चोटों से तत्परतापूर्वक इसे पूर्ण किया। जब काम समाप्त हो गया, कड़ियां जुड़ गईं, तब मैंने देखा कि इसने मुझे ही जकड़ लिया है।

(४)

मेरे प्रियतम ! मैं जानता हूं कि यह स्वर्णप्रकाश जो पत्तियों पर नाच रहा है, ये आकाश में घूमते बादल, मेरे मस्तक

को शीतल करती हुई प्रभात की यह बहती हुई वायु, अन्य कुछ नहीं केवल तुम्हारा प्रेम है।

प्रभातकालीन प्रकाश ने मेरे नेत्रों को प्लावित कर दिया है, यह मेरे हृदय के लिए तुम्हारा सन्देश है। तुमने मेरी ओर मुख किया, मेरे नेत्रों में नेत्र मिलाये और मेरे हृदय ने तुम्हारे चरणों को छू लिया।

(५)

क्या कोई जानता है कि बच्चे की आंखों में निंदिया कहां से आती है ? हाँ, एक जनश्रुति है कि उसका निवास वन की घनी छाया के बीचों-बीच स्थित एक परियों के देश में है, जहां जुगनुओं का मन्द प्रकाश रहता है और जहां जादू की दो कोमल कलियां लटकती रहती हैं। यहां से बच्चों की आंखों को चूमने आती हैं।

सोते हुये बच्चे के ओठों पर जो मुस्कान प्रकट होती है, वह कहां से आती है ? हाँ, एक जनश्रुति है कि दूज के चन्द्रमा की नवीन पीत किरण किसी जाते शरदी गई । बस, यही प्रथम बार शिशिर-छवि

प्रभात की स्वप्न-अवस्था में मुस्कान का प्रथम जन्म हुआ । यही मुस्कान सोते हुए बच्चे की ओठों पर प्रकट होती है ।

क्या कोई जानता है कि जो मधुर कोमल लावण्य बच्चे के अंगों में विकसित हो रही है वह इतने दिनों तक कहां छिपी रही थी ? हाँ, जब मां किशोर-अवस्था में थी तब यह अप्रकट रहस्यमय मृदु प्रेम बन कर उसके हृदय में व्याप्त था । यही मधुर कोमल लावण्य बच्चे के अंगों पर विकसित हुई है ।

महात्मा गांधी

प्रारम्भिक

'जिस अनुपम महापुरुष ने अपने जीवन से यह दिखा दिया है कि आत्मा की तेज़ धार के सामने पैनी से पैनी तलवार भी कुंठित है, तपस्या के सामने आज कल के महादुर्धर्ष और भयंकर विज्ञान की आंच ठन्डी हो जाती है, त्याग के सामने दुनियां के भोग-विलास फीके और नीरस हो जाते हैं, सत्य के सामने माया नटी के सारे परदे फट जाते हैं, जिस महात्मा ने अपने व्यवहार से हमारे पहले ऋषियों की इन धारणाओं को जीवन की कसौटी पर कस कर परखाया, वही हमारे इस युग के पूज्य नेता महात्मा मोहनदास गांधी थे, जिन्हें हम महात्मा गांधी, केवल गांधी जी या बापू, इस प्यार भरे नाम से पुकारते हैं।'

जन्म

गुजरात (काठियावाड़) में सागर के तट पर एक अति सुन्दर रियासत है, जिसे पोरबन्दर कहते हैं। इसी सौभाग्यशाली रियासत में हमारे पूज्य नायक महात्मा जी का जन्म अक्तूबर, सन् १८६९ को हुआ था। आप जाति के वैश्य थे। आपके पितामह दीवान उत्तमचन्द जी इस रियासत के मन्त्री थे। एक दिन राजमाता और दीवान उत्तमचन्द में किसी बात पर विवाद हो गया। परिणाम यह हुआ कि इन्हें स्वरक्षार्थ रियासत छोड़ के भागना पड़ा। वहां से भागकर ये जूनागढ़ के दरबार में गये और वहां के नवाब ने इन्हें एक उत्तम पद पर स्थापित कर दिया। इसके कुछ ही दिनों बाद राजमाता को अपनी करणी पर पश्चात्ताप हुआ और इन्हें फिर अपने पास बुलवा लिया।

दीवान उत्तमचन्द की मृत्यु के बाद उनके सुपुत्र श्री कर्मचन्द को भी वही पद प्रदान किया गया जिसे वे भी बाईस वर्ष तक संभाले रहे। अपनी मृत्यु के समय श्री कर्मचन्द ने अपनी सारी की सारी सम्पत्ति दान में बांट दी थी, और अपने पुत्र श्री गांधी जी के लिए आदर्श और आशीर्वाद के सिवा और कुछ नहीं छोड़ा था।

गांधी जी की माता जी अत्यन्त धर्मनिष्ठ और ईश्वर-विश्वासिनी महिला थीं। उपवास रखकर ईश्वर को प्रसन्न करने में उनकी विशेष आस्था थी। सात सात दिनों के उपवास तो वे कई वार रखती थीं। एक वार उन्होंने सूर्यदर्शन किये बिना भोजन न करने का व्रत रखा

हुआ था। कई दिनों तक आकाश के मेघाच्छन्न रहने के कारण सूर्य भगवान के दर्शन ही न हुए। एक दिन जब सूर्य निकला भी तो उनके पहुँचने से पूर्व ही फिर मेघों में छिप गया। कई दिनों तक और उन्हें अनाहार रहना पड़ा। इन्हीं माता जी के सदाचरण का गांधी जी पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उपवास और ईश्वर में अटल श्रद्धा आपको माता जी की ही देन थी।

बचपन और शिक्षा

सात वर्ष की उम्र तक गांधी जी की शिक्षा पोरबंदर की एक देहाती पाठशाला में ही होती रही। इसके पश्चात् तीन वर्ष तक राजकोट में और पुनः काठियावाड़ के हाईस्कूल में पढ़ते रहे। आपकी उम्र अभी बारह साल ही की थी कि आपका विवाह श्री कस्तूरा बाई से हो गया था। श्रीमती कस्तूरा बाई शिक्षित नहीं थीं तो भी जिस स्नेह और भक्ति से इन्होंने पतिदेव की जीवनयात्रा में अनुसरण किया है उससे आजकल की शिक्षित कहलाने वाली नारियों को शिक्षा लेनी चाहिये।

अस्तु, मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आपने भावनगर कालिज में प्रवेश किया। अभी आप कालिज में पढ़ते ही थे कि एक ब्राह्मण मित्र के परामर्श से आपकी विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने की इच्छा हुई। आपकी माता इससे सहमत न थीं क्योंकि उन्हें विलायत में आपके आचरणभ्रष्ट हो जाने का भय था। परन्तु आपने जब वहां पर सदाचारी रहने का माता जी से प्रण किया तो उनकी अनुमति मिल गई।

भारत से विदा होकर गांधी जी सन् १८८८ में लंदन पहुँचे और वहां पर एक होटल में ठहरे । विलायत में आपके सामने धर्मच्युत होने के कई अवसर आते रहे परन्तु माता जी से किये हुए प्रण ने आपके पांवों को दृढ़ रखा, इन्हें फिसलने न दिया । तीन वर्ष वहां रहकर और बैरिस्टर बन कर आप स्वदेश को लौट आये । यहां पहुँचकर जब आपको माता जी के देहावसान का वृत्त, जिसकी सूचना आपके परिवार के लोगों ने लौटने तक आपसे गुप्त रखी थी, मालूम हुआ तो आपको अत्यन्त विषाद हुआ । माता के चरणचुंबन की जिस लालसा को लिये आप लौटे थे, विधाता ने उससे आपको वंचित कर दिया । कुछ दिन बाद आपने बंबई में बैरिस्टरी वृत्ति को आरम्भ कर दिया ।

पोरबंदर के एक महाजन को प्रिटोरिया में एक मुकद्दमा लड़ना था । उसने गांधी जी को अपना प्रतिनिधित्व देकर वहां भेजना चाहा । इसलिये आप सन् १८९३ में उस मुकद्दमे की पैरवी करने के लिये दक्षिण-अफ्रीका चले गये ।

दक्षिण-अफ्रीका

जहाज़ से उतर कर दरबन में पांव धरते ही आप दंग रह गये । आप बंबई के मान्य बैरिस्टरों में से थे । साथ ही एक रियासत के मंत्री के पुत्र थे, उच्च वंश से आपका नाता था, बड़े-बड़े लोग आपका आदर करते थे, परन्तु वहां पर आपसे जो सुलूक हुआ उससे आपको बड़ा क्रोध हुआ, तन बदन में एकदम

आग सी लग गई। कारण यह था कि जब आपने वहां के वकीलों की सूची में नाम दरज कराने के लिए प्रार्थनापत्र भेजा तो आपका इस लिए विरोध किया गया कि आप हिन्दुस्तान के 'कुली' हैं। (वहां पर सब हिन्दुस्तानियों को 'कुली' कहते थे।) वहां के वकील एक 'कुली' के मुकाबले में खड़े होते अपनी मान-हानि समझते थे किन्तु कुछ प्रयास के बाद आपका नाम अन्त में वकील-गणना में ले लिया गया।

उस समय अफ्रीकानिवासी गोरे हिन्दुस्तानियों से अतिगर्ह्य व्यवहार कर रहे थे। वे एक तरह से इन्हें मनुष्य ही नहीं मानते थे। सरकार की ओर से कई ऐसे नियम प्रचलित थे जिनके द्वारा इन्हें वहां के गोरे लोगों के साथ सम्पर्क भी निषिद्ध था। अपने सजातीय भाईयों की ऐसी दशा देख कर महात्मा जी की स्वाभिमानी आत्मा को भीषण आघात पहुँचा। अफ्रीकानिवासी भारतीयों से, जो अब तक नेतृहीन थे आपने मेल जोल बढ़ाना शुरू किया और उन्हें आश्वासन दिया। फिर कुछ विमर्श के बाद आपने यही निश्चय किया कि वहीं रह कर भारतीयों की दशा सुधारी जाय।

सबसे पहले आपने 'नेटाल इंडियन कांग्रस' (नेटाल भारतीय राष्ट्रसभा) की स्थापना की। आप कई वर्षों तक इसके मंत्री रहे। इसके द्वारा वहां जो प्रचार किया गया उससे वहां के सब शिक्षित भारतीय संगठित हो गये। क्रमशः इस सभा का प्रभाव व्यापक होता गया। इसी के द्वारा वहां के कई भारतीय-विरोधी नियमों का विरोध किया गया। इस काम में आपको कई बार सफलता भी मिली

भारत में

सन् १८९६ में गांधी जी अफ्रीका से भारत लौट आये। यहां आकर आपने लोगों के सामने वहां की परिस्थिति का वास्तविक चित्र रखा, जिससे सबका ध्यान उधर आकर्षित हो गया। अफ्रीका-निवासी भारतीयों से जो व्यवहार कर रहे थे उसके विरोध में कई जलसे हुए। समाचारपत्रों में कई उग्र लेख निकले। इस आंदोलन से अफ्रीका के गोरों के कान खड़े हो गये। वे गांधी जी को इसका कारण मान कर आपके विरुद्ध हो गये। कुछ समय बाद जब आप जहाज़ में सवार होकर अफ्रीका को लौटे तो वहां के निवासी गोरों ने आपका जहाज़ किनारे ही न लगने दिया। परन्तु जहाज़ के स्वामियों ने जब उन्हें आर्थिक हानि के अभियोग की धमकी दी तब कहीं वह किनारे लग सका।

अब जहाज़ से उतर कर जाना सहल न था। हज़ारों अफ्रीका के गोरे उपद्रव करने को तुले थे। पुलिस के कप्तान ने गांधी जी से कहा कि आप इस समय जहाज़ से न उतर कर सायं को उतरिये। परन्तु आपने उसकी बात को टाल दिया और अपने कुटुम्ब के लोगों को एक मित्र के यहां भेजकर स्वयं अकेले चल पड़े। आपको देखते ही घूसों, मुक्कों और डंडों की वर्षा होने लगी। पुलिस-कप्तान की स्त्री ने जब देखा कि आप पर विपत्ति आने की सम्भावना है तो उसने आपकी रक्षा की और उसी मित्र के पास पहुँचा दिया जहां आपके परिवार के लोग थे।

दक्षिण-अफ्रीका में कुली-प्रथा

दक्षिण-अफ्रीका के गोरे लोग वहां के आदि निवासी नहीं हैं। वहां के वास्तविक निवासी बिल्कुल अशिक्षित और असभ्य

है। जब अमरीका में दासक्रयविक्रयप्रथा चल रही थी तो इन आदिनिवासियों को गोरे लोग अमरीका में ले जाते और उनके विक्रय से धन कमाते। उनके धनार्जन का यह एक बहुत बड़ा साधन बन गया था। पीछे जब अमरीका में दासक्रयविक्रय की प्रथा बन्द हो गई तो उन गोरों को अफ्रीका में ही खेतीबारी के धंधे से आजीविका चलानी पड़ी। परन्तु खेती का व्यवसाय परिश्रम-साध्य है और वे लोग परिश्रमी नहीं थे। अतः उन्हें मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी। उनका ध्यान भारत की ओर गया। यहां से कई लोगों को उत्तम वृत्ति का धोखा देकर वे वहां ले जाते और उनसे कुलियों के काम लेते।

यह प्रथा वहां कई सालों तक चलती रही। कुछ समय बाद कुछ कुली तो स्वदेश लौट आये परन्तु जो न आ सके वे वहीं बस गये और कुछ धंधा कर पेट पालने लगे। ये लोग मेहनती थे, शौकीन न थे, अतः थोड़ी सी ही पूंजी से व्यापार चला कर घरगृहस्थी का काम चलाने लगे। कइयों ने जो कुछ अधिक उत्साही थे, वहीं अपने घर भी बना लिये और खेत भी ख़रीद लिये। यह देख कर वहां के गोरे लोग जलभुन से गये। अपने अद्वितीयाधिकार में वे किसी अन्य का हस्तक्षेप सहन न कर सके। उन्होंने कानून की आड़ लेकर भारतीयों को जायदाद से वंचित करना चाहा। दक्षिण-अफ्रीका के आंदोलन का यही आधार है।

तब से लेकर यह समस्या सुलझने नहीं पाई। बीच बीच में कभी शान्त हो जाती है और कभी फिर उग्र रूप धारण कर लेती है। आज कल सन् १६४६ के जुलाई मास से यह फिर

भयंकर रूप धारण कर रही है। वहां की गवर्नमेंट द्वारा कई एक ऐसे नियम लागू कर दिये गये हैं जिनसे वहां के भारतीयों का वहां निवास ही असंभव सा हो गया है ।

महात्मा जी जब अफ्रीका में थे तो आपने सत्याग्रह, अहिंसा और दृढ़ता के आधार पर कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया था । इनके द्वारा आपने वहां के शासकों से संघर्ष शुरू कर दिया। तब से लेकर अब तक आप आजीवन इन्हींके प्रयोग से सफलता पर सफलता प्राप्त कर रहे । इन साधनों को शिक्षा आपको तपश्चर्या और वंश-परंपरा से मिली है। ये एक तरह से आपके माता-पिता की धार्मिकता के गहरे प्रभाव के फल थे। जैन धर्म ने, जिसके आप आजन्म भक्त और अनुयायी थे, आपको अहिंसा और तप की शिक्षा दी। वैष्णव धर्म से आपने आस्तिकता और दृढ़ता की शिक्षा ली । ईसाई धर्म और मेडम ब्लवरस्की से आपको ब्रह्मविद्या मिली थी। ये सब सिद्धान्त आपके जीवन के अंग से बन गये थे। आपके दैनिक आचरण में इन सब की गहरी छाप स्पष्ट दिखाई देती थी। यह सत्य है कि आपने कभी भी किसी के आचरण से रुष्ट होकर प्रत्यपकार में उसे हानि नहीं पहुँचाई, परन्तु यह भी सत्य है कि आपने कभी जातीय और वैयक्तिक अभिमान और साहस को भी नहीं छोड़ा ।

बोयरयुद्ध

अक्तूबर, सन् १८९९ में बोयरों और अंग्रेज़ों के मध्य में भयानक युद्ध छिड़ गया। गांधी जी ने अफ्रीका निवासी भारतीयों और

अंग्रेज़ों में सद्भाव उत्पन्न करने के लिए इस अवसर को हाथ से निकलने न दिया। अंग्रेज़ों का पक्ष लेकर भारतीयों को सेना में भर्ती कराया। इनके सपुर्द क्षत-विक्षतों को युद्धस्थल से सुरक्षित ले जा कर हस्पतालों में पहुँचाने का काम था। इन लोगों ने गोलों की भयंकर वर्षा में भी प्राणों का मोह छोड़कर ऐसे वीरोचित काम किये कि गोरे लोग दंग रह गये। इनकी सर्वत्र प्रशंसा के पुल बांधे गये।

बोयरों की पराजय हुई। उनके देश 'ट्रांसवाल' और 'आरेंज फ्री स्टेट' अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित किये गये। महात्मा जी को विश्वास था कि भारतनिवासियों की इस सहायता से गोरे लोग कृतज्ञता से इन लोगों को अब कष्ट न देंगे। अतः वे अफ्रीका से लौटकर भारत चले आए। इनको आये अभी कुछ ही दिन हुए थे कि अत्याचारों का दौर-दौरा फिर शुरू हो गया। एशिया के निवासियों के विरुद्ध फिर नये-नये नियम बनने लगे। इससे महात्मा जी को बहुत निराशा हुई।

फिर दक्षिणी अफ्रीका को

महात्मा जी के स्वदेशीयों पर अन्य जातीयों के अत्याचार हों और आप चुपचाप देखते रहें, यह आपको कैसे सह्य था! आप फिर अफ्रीका लौट गये और आन्दोलन चला दिया। सन् १६०३में आपने एक छापाखाना मोल लेकर 'इन्डियन ओपीनियन' नाम का पत्र निकाला। इसके द्वारा आपने राजनैतिक वातावरण मे खलबली पैदा कर दी। जहां पर

यह छापाखाना था वहीं पर कुछ बिघे भूमि लेकर एक आश्रम खोला जिससे छापेखाने में काम करने वाले और कई दूसरे लोग निवास करने लगे। वहां पर जो लोग रहते थे उन सबका जीवन बहुत सरल था। महात्मा जी ने भी भावी दुखों को सहन करने की शक्ति प्राप्त करने के निमित्त घोर तपस्या शुरू कर दी। आपने अपने भोजन की मात्रा इतनी कम कर दी कि वह आपके प्राण-धारण के लिए ही पर्याप्त थी। रात को एक कंबल बिछा कर मैदान में ही सोते थे। निजसम्बन्धी सब के सब काम अपने ही हाथों से करते थे। इस जीवनयात्रा से आपकी देह तो बहुत दुर्बल हो गई थी परन्तु उसके अन्दर जो आत्मा का साहस, धैर्य और निष्ठा निवास करती थीं, उनके कारण उसमें भीषण से भीषण आघातों को भी सहन करने की क्षमता उत्पन्न हो गई थी।

सत्याग्रह

इसी अन्तर में अंग्रेज़ों और जुलू जाति के लोगों में युद्ध छिड़ गया। महात्मा जी ने इस बार भी अंग्रेज़ों की न्यायपरता और दूरदर्शिता के भरोसे भारतीयों को इनके पक्ष में लड़ने की अनुमति दी। परन्तु विजय के बाद जब आपको पता लगा कि इन लोगों के बलिदानों के पुरस्कार में इन्हें और भी अपमानजनक कष्ट दिये जा रहे हैं तो आपको अपार कष्ट हुआ। भारतीयों को आज्ञा मिली थी कि वे सब अपने नाम रजिस्ट्रों में दरज करा कर अंगूठे की छाप लगायें। यह सुनते ही महात्मा जी का रक्त उबलने लगा आपने ललकार

कर सब से कहा कि ऐसे न्यायविरुद्ध कानून के आगे माथा नवाने से मिट जाना कहीं उत्तम है। आपकी आवाज़ को लोगों ने वेदवाक्य माना। सब ने उस नियम को न पालने का प्रण किया। अधिकारी अंगूठा छापने को जाते पर सब उन्हें अंगूठा दिखाते। इससे वे बौखला उठे। धरपकड़ शुरू हो गई। बन्दीकृत लोग चुपचाप जेलों को भरने लगे। जेल यात्रा करने वालों में पुरुष भी थे, स्त्रियां भी थी। बालक भी थे, युवक भी थे, बूढ़े भी थे। हज़ारों लोग जेलों में चले गये। सब जेल भर गये। महात्मा जी को भी पकड़ कर जेल में भेज दिया गया। इस जेल यात्रा से आप अत्यन्त प्रसन्न थे क्योंकि आपको सफलता की इतनी आशा न थी। जिस साहस और धैर्य से लोगों ने इस दमन का मुकाबला किया उन्हें देखकर महात्मा जी बहुत गद्‌गद हो गये।

भारतीयों के इस प्रकार के साहस को देखकर दक्षिणी अफ्रीका के शासकों का धैर्य छूट गया। उन्होंने इन्हें आश्वासन दिया कि कुछ ही समय के बाद सब कानून वापस ले लिये जायेंगे। परन्तु ये वचन केवल वचनमात्र ही रहे, कार्य में परिणत नहीं हुए। परिणाम यह हुआ कि फिर पहले से भी उग्रतर संघर्ष का चक्र चल पड़ा। इस संघर्ष में सब जातियों के लोग शामिल थे—हिन्दू थे, मुसलमान थे, ईसाई थे, सिक्ख थे, और भी कई थे। इसमें लगभग बीस हज़ार सत्याग्रहियों को जेल में जाना पड़ा। सब भारतीय मज़दूरों ने काम छोड़ दिये। खेत सूखने लगे, मिलें बन्द हो गईं, सब कारोबार रुक गये। गोरे व्यापारियों को लाखों की हानि उठानी पड़ी।

गांधी जी को दोबारा पकड़ कर पंद्रह मास का दन्ड दिया गया। अधिकारियों का विचार था कि गांधी जी के नेतृत्व से विहीन हो कर वे लोग कुछ न कर सकेंगे। परन्तु भारतवासियों की वह फौज न थी, जो नेता के अभाव में हथियार डाल देती। महात्मा जी के पीछे भी सत्याग्रह का काम और भी ज़ोर से चलने लगा। भारत में भी इसके प्रतिवाद में बहुत आंदोलन हुआ। यहां से श्रीयुत एंड्रयूज़ और पियरसन जांच के लिये वहां गये। उन्होंने वहां की परिस्थिति का पर्यालोचन किया। परिणाम यह हुआ कि सब भारतीय विरोधी कानून वापस लिये गये और सत्याग्रही छोड़ दिये गये। महात्मा जी के सत्याग्रह की यह प्रथम और शानदार विजय थी। इस विजय से महात्मा जी को सत्याग्रह के महत्व का पूरा ज्ञान हुआ और तब से लेकर यह राजनैतिक संघर्ष का सर्वोत्तम शस्त्र सिद्ध हुआ है।

दक्षिणी अफ्रीका के संवर्ष से महात्मा जी को इस बात का ज्ञान हुआ कि भारतीयों को जो कहीं भी परदेश में प्रतिष्ठा नहीं है इसका कारण यही है कि उनकी अपने देश में भी कोई सत्ता नहीं है। अतः भारत की स्वतंत्रता के युद्ध दूर देशों में नहीं, यहीं पर लड़े जाने चाहिएं। परन्तु जो संघर्ष सुदूरवर्ती दक्षिण अफ्रीका में किया था वह भी निष्फल नहीं गया। उसका एक फल तो यह हुआ कि आपको कई बार जेलों में जाकर तपस्या करनी पड़ी। वहीं पर आपकी ध्यान-शक्ति और धारणा बढ़ी। अच्छे से अच्छे विचारों का उदय भी वहीं पर हुआ। कड़े से कड़े दुःख उठाने की शक्ति भी वहीं पर दृढ़ हो गई। वहीं पर आपको आत्म-

संयम और योगबल की शक्ति का भान हुआ। जेलों की भट्टी में तप कर सोना कुन्दन हो गया।

इन्हीं दक्षिणी अफ्रीका के जेलों के एकान्त में महात्मा जी को भारत की दशा पर विचार करने का अवसर मिलता रहा। इधर भारत भी बहुत देर से टकटकी बांधे आपकी ओर ही आशा लगाये देख रहा था।

अफ्रीका में सफलता प्राप्त कर महात्मा जी विलायत में श्री गोखले जी को, जो वहां रुग्ण पड़े थे, मिलने गये। वहां पर आप साधारण से वस्त्र पहनते और नंगे पांव रहते। इससे आपका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया। इसी अन्तर में प्रथम योरपीय महासमर का सूत्रपात हुआ। आपने और आपकी स्त्री श्री कस्तूरा बाई ने एक एम्बुलेंस-कोर में प्रविष्ट होने के लिए अपने नाम दे दिये परन्तु आपके गिरते हुए स्वास्थ्य ने आपको कुछ करने न दिया। इसलिए आप भारत लौट आये।

जब आप बम्बई में पहुँचे तो आपका अपूर्व समारोह से स्वागत किया गया। यहां पर आप तीन चार मास अन्यान्य नगरों में घूमते रहे और भारतीय परिस्थिति का अध्ययन करते रहे। इसके पश्चात् अहमदाबाद में साबरमती के तट पर 'सत्याग्रह-आश्रम' स्थापित कर वहीं रहने लगे। आश्रम में आपका दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार था। प्रातः ही चार बजे ब्रह्म मुहूर्त में आप उठते। घन्टा-डेढ़-घन्टा आटा-दाल पीसने के अनन्तर सूर्योदय से पूर्व स्नान करते और ईश्वर-प्रार्थना करते। पुनः वहां के निवासियों के साथ जल-पान करते। इसके अतिरिक्त आप खेतों को

भी सींचते । दस बजे के लगभग सब को भोजन जिमा कर स्वयं जीमते । यह आपका नैत्यिक कार्यक्रम था । शेष समय को आप चिट्ठी-पत्री लिखने, चरखा कातने, रामायण-आदि ग्रन्थों को सुनने और सुनाने में लगाते । आपका एक क्षण भी व्यर्थ न जाता । कभी कभी खाते-खाते ही पढ़ते या किसी से बात चीत करते रहते । दोपहर के बाद कुछ भोजन कर टहलने को निकलते । सात बजे पुनः प्रार्थना कर तत्पश्चात् नौ बजे के लगभग सो जाते । इसी आश्रम में आपने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग किया और मद्रास में हिन्दी-प्रचार की नींव भी यहीं डाली ।

सन् १९१६ में आप लखनऊ-कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए । उन दिनों बिहार के चंपारण ज़िले में कुछ आन्दोलन चल रहा था । उसमें भाग लेने को आप से प्रार्थना की गई । लोगों की प्रार्थना से आप वहां की परिस्थिति को स्वयं जांचने के लिए गये और सारे इलाके का दौरा किया फिर वहां की वास्तविक परिस्थिति को सरकार के सामने रक्खा । इसका परिणाम यह हुआ कि उसको एक कमीशन नियुक्त करना पड़ा जिसके महात्मा जी भी एक सदस्य थे । आपके उद्योग से चंपारणवालों के बहुत से दुःख निवृत्त हुए ।

इसके बाद एक और घटना हुई । अनावृष्टि के कारण गुजरात के खेड़े के किसानों की दशा बहुत दयनीय हो गई थी । उनकी खेती बिलकुल न हुई थी, परन्तु उनसे भूमिकर मांगा जा रहा था । वे लोग उसे न दे सकते थे । इस समय भी महात्मा जी के उद्योग से सरकार ने आगामी खेती की उपज तक भूमिकर वसूल करना स्थगित कर दिया ।

योरपीय महासमर में महात्मा जी ने सरकार की इस आशा से सहायता की थी कि युद्ध की समाप्ति पर भारतीय दशा बहुत कुछ सुधर जायगी। परन्तु जब युद्ध समाप्त हुआ तो आपकी आशाओं पर पानी फिर गया। रौलेट एक्ट के द्वारा देश को और भी नियन्त्रित करने के यत्न होने लगे। आपने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। समस्त देश में कोलाहल सा मच गया। जगह जगह सभाओं और जलसों में इसका प्रतिवाद किया गया। सरकार ने भी अपनी शक्ति का पूरा उपयोग किया। अमृतसर में जलियाँवाले बाग़ की प्रसिद्ध घटना इन्हीं दिनों हुई थी। इस घटना से सैकड़ों जानें गईं थीं। सारे पंजाब प्रांत में मार्शल ला घोषित किया गया था।

जब वातावरण कुछ शांत हुआ तो स्वामी श्रद्धानन्द, पं० मोतीलाल नेहरू और पंडित मदनमोहन मालवीय ने पंजाब में पधार कर जनता की दुःखित आत्माओं को ढारस देकर शान्त किया। इसके बाद महात्मा जी स्वयं भी वहाँ पधारे और नगर-नगर, गांव-गांव की यात्रा कर लोगों को साहस दिया। इनके संभाषणों से लोगों में पुनः जीवनसंचार हुआ।

प्रथम महासमर के बाद विजित देशों के बटवारे का प्रश्न उठा। टर्की अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ा था। इसलिये उसके कुछ नगरों पर अंग्रेज़ों ने अधिकार कर लिया था। इससे भारतीय मुसलमान बेकल उठे थे। परिणाम यह हुआ कि देशव्यापी खिलाफत-आंदोलन शुरू हो गया। कांग्रेस ने भी इसमें मुसलमानों को पूरा सहयोग दिया। एक कमेटी नियत की गई जिसके प्रधान महात्मा जी बने। हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर आंदोलन

शुरू किया। सदियों से बिछुड़ी हुई दोनों जातियां फिर गले मिलीं। उस समय यही प्रतीत होता था ये फिर कभी न बिछुड़ेंगी, परन्तु यह स्वप्न कुछ समय बाद भंग हो गया।

महात्मा जी की प्रधानता में सर्वदेशव्यापी आंदोलन शुरू हो गया। आपने सत्याग्रह और असहयोग की शक्ति का पूरा प्रयोग किया। फल यह हुआ कि उपाधिधारियों ने उपाधियां छोड़ दीं, वकीलों ने वकालत बंद कर दी, सरकारी नौकरों ने नौकरियां छोड़ दीं। आपस के झगड़ों के निर्णय पंचायतों द्वारा होने लगे। विद्यार्थियों ने स्कूल-कालिज छोड़ दिये। राष्ट्रीय स्कूल और कालिज खुल गये। इस पर सरकार को बहुत चिन्ता हुई। उसने भी दमननीति की शरण ली। धर-पकड़ जारी हो गई। जेल भरने लगे। थोड़े में यह कि देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जागृति ही जागृति दिखाई देने लगी जिसके एकमात्र उत्पादक महात्मा जी थे।

सत्याग्रह पूरे ज़ोर से चल रहा था। लोगों को उद्देश्यपूर्ति में कुछ भी संदेह नहीं था कि गोरखपुर ज़िले के चौराचौरा गांव के लोगों ने आवेश में आकर पुलिस-स्टेशन को जला दिया, जिसके साथ कुछ सिपाही भी जल गये। महात्मा जी आंदोलन को शान्तिमय वातावरण में चाहते थे। उनका विचार था कि अहिंसा सत्याग्रह का प्रथम सिद्धान्त है, इसलिए इसके नाम पर वे एक भी व्यक्ति की हत्या नहीं चाहते थे। इस घटना से पूर्व आंदोलन पूर्ण वेग से चल रहा था और इसके पूर्णतया सफल होने की आशा थी। परन्तु इस दुर्घटना से निराश होकर आपने उसे एक दम स्थगित कर दिया। इसके बाद आप भी पकड़े जाकर जेल भेज दिये गये।

सन् १९२४ में आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। जेल के हस्पताल में आपका ओपरेशन करना पड़ा। जब आप कुछ अच्छे हो गये तो दण्ड की पूरी अवधि समाप्त होने से पहले ही मुक्त किये गये।

यह वर्ष भारत के दुर्भाग्य का वर्ष था। सांप्रदायिक दंगे सर्वत्र चल रहे थे। एक न एक घटना प्रतिदिन हो जाती थी, कभी एक जगह कभी दूसरी जगह। महात्मा जी इस पर बहुत चिन्तित हुए। विवश हो आपने दिल्ली में इक्कीस दिन का अनशन व्रत धारण कर लिया और उसे तभी छोड़ा जब हिन्दू और मुसलमान नेताओं ने एक बड़ी कान्फ्रेंस बुला कर आपको यह आश्वासन दिया कि वे बंद किये जायेंगे।

कुछ समय बाद आपके मन में यह विचार उदित हुआ कि सांप्रदायिक दंगों का आधार इतना राजनैतिक नहीं जितना वृत्ति का प्रश्न है। अतः आपने ग्राम्य जनता की आय को बढ़ाने के निमित्त खादी का प्रचार आरम्भ किया। इसके लिए आपने सारे देश की यात्रा की, नगर-नगर और गांव-गांव में जाकर अपना संदेश स्वयं पहुँचाया। फल यह हुआ कि खादी का बहुत प्रचार हो गया। जुलाहों को, जिनमें बहुत अधिक संख्या मुसलमानों की है, इससे बहुत लाभ हुआ। किसानों का समय, जो पहले बहुतसा व्यर्थ जाता था, अब सूत कातने और खादी बुनने में लगने लगा। घर-घर चरखे चलने लगे। इससे उनकी आय भी बढ़ने लगी। उत्तम से उत्तम विदेशी वस्त्र पहनने वाले भी खादी पहनना अपना कर्तव्य समझने लगे।

धीरे-धीरे सन् १९२७ और १९२८ का समय आगया। हताशता रूपी राख के नीचे सुलगती राजनैतिक आग फिर प्रचंड होने लगी। सरकार ने भारत की राजनैतिक स्थिति की जांच के लिये एक कमीशन यहां भेजा। इसके प्रधान साइमन साहिब थे परन्तु कोई भारतीय इसका सदस्य न था। इसलिए महात्मा जी के आदेश से इसका बहिष्कार किया गया। जहां जहां यह कमीशन जाता इसके विरुद्ध प्रदर्शन होते। अन्त में जो रिपोर्ट इसने प्रस्तुत की कांग्रेस ने उसे स्वीकार न किया।

सन् १९२९ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसमें एक प्रस्ताव द्वारा पूर्णस्वराज्य की मांग की गई। परन्तु सरकार ने इसकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया। परिणाम यह हुआ कि महात्मा जी ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। आपने पहले सविनय आज्ञाभंग शुरू किया। कुछ स्वयंसेवकों को लेकर डांडी-यात्रा को नमक के नियम तोड़ने के लिए चल पड़े! मार्ग में हर जगह अपूर्व समारोह के साथ आपका स्वागत होता रहा। हज़ारों लोग आपके साथ हो लिये। आपके उद्देश्य का प्रचार इतना सैकड़ों जलसों और समाचारपत्रों द्वारा न होता जितना इस पैदल यात्रा से हुआ। सरकार ने स्थिति को अधिक बिगड़ने से रोकने के लिए आपको बन्दी कर लिया।

लगभग आप एक वर्ष जेल में रहे। पश्चात् सन् १९३१ के मार्च में आपका लार्ड इरविन से समझौता हो गया और उसके अनुसार आपको गोलमेज़-कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिये

विलायत जाना पड़ा। परन्तु वहां पर भी आप उद्देश्य में सफलता प्राप्त न कर सके। लंदन से लौटते ही आप बंबई में बन्दी कर फिर जेल में भेज गये।

सन् १६३२ में इंगलैंड के प्रधान मन्त्री श्रीयुत रामज़े मेकडानल्ड साहिब ने भारत-शासन-सुधार की आयोजना प्रस्तुत की, जिसके द्वारा हरिजनों को हिन्दुओं से अलग मान कर उन्हें अलग निर्वाचनाधिकार [दिये गये। गांधी जी इसे सहन न कर सके और इसके विरोध में जेल में ही आपने अनशन व्रत आरभ कर दिया। पूना में सब नेता एकत्रित हुए। हरिजनों के प्रतिनिधि डाक्टर अंबेदकर से हरिजन-प्रतिनिधित्व के संबन्ध में एक समझौता हुआ जिसे ब्रिटिश सरकार ने भी मान लिया। अनशन-त्याग के कुछ दिनों बाद ही आप फिर जेल से छोड़ दिये गये।

जेल से मुक्त होकर श्रीयुत गांधी जी ने हरिजन उद्धार के निमित्त आंदोलन बहुत जोर ज़ोर से शुरू कर दिया। सवर्ण हिन्दुओं को उनके प्रति सद्भाव रखने के लिये प्रेरित किया गया। फलतः सदियों से जो मंदिर इनके लिए बंद थे, वे जगह-जगह खुलने लगे।

सन् १६३५ में जब कांग्रेस ने नये सुधारों के आयोजन को स्वीकार कर प्रान्तों में मन्त्रिपदों को ग्रहण करने का निश्चय किया तो महात्मा गांधी ने भी अपना कार्यक्षेत्र कुछ बदल दिया। आपने ग्रामोद्धार का काम हाथ में लिया। इस कार्य के लिए हज़ारों अनुयायियों ने अपनी सेवायें आपको भेंट कीं। परिणामस्वरूप

ग्रामोद्योग-संस्था की स्थापना हुई। साथ ही गांधी-सेवासंघ का भी सूत्रपात हुआ। दोनों संस्थाओं द्वारा इस समय भी बहुत बड़ा कार्य हो रहा है।

सन् १९३९ में दूसरा महासमर शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की अनुमति के बिना ही भारत को युद्ध का साथी घोषित कर दिया। साथ ही इस प्रश्न का भी कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया कि युद्ध का ध्येय क्या है और उसकी समाप्ति पर भारत की क्या सत्ता होगी। इस पर प्रान्तीय शासनों के मंत्रियों ने त्याग-पत्र देकर अपने अपने पद छोड़ दिये। इसी सम्बन्ध में महात्मा जी की वायसराय से कई भेटें हुईं, परन्तु सुफल कुछ न हुआ।

सन् १९४० में रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस में महात्मा जी ने एक सारगर्भित भाषण दिया, साथ ही आन्दोलन का नेतृत्व आपने अपने हाथ में लिया। यद्यपि यह भार बहुत बड़ा था और आपकी देह जो सत्तर वर्ष के पास पहुंच रही थी, बहुत दुर्बल थी, तो भी आत्मा की जो अपार शक्ति आपमें विद्यमान थी, उसके आश्रय आपने एक सिरे से दूसरे सिरे तक देश में नया जीवन फूंक दिया। सरकार को फिर आपको बंदी करने को विवश होना पड़ा।

सन् १९४२ में युद्ध ने उग्र रूप धारण कर लिया था। जर्मनी की शक्ति बढ़ रही थी। इसी अन्तर में जापान भी रणक्षेत्र में कूद पड़ा था जिससे स्थिति और भी भयंकर हो गई थी। इसी अन्तर

में प्रधान सचिव श्री चर्चिल ने क्रिप्स साहिब को भारतीयों से समझौता करने को यहां भेजा। उन्होंने आकर यहां के नेताओं से परामर्श किया। इस समय लोगों को कुछ समझौता हो जाने की पूर्ण आशा थी, परन्तु किसी कारणवश वह न हो सका।

इससे बृटिश सरकार को बहुत दुःख हुआ। उसने कांग्रेस से पुनः कुछ अधिक सख्ती का व्यवहार करने का निर्णय किया। जब कांग्रेस के नेता ६ अगस्त, सन् १६४२ के दिन बम्बई की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन से लौट रहे थे तो कार्यकारिणी सभा के सब सदस्यों को बन्दी किया गया। गांधी जी भी उन्हीं में थे। लोगों पर यह आकस्मिक वज्रपात हुआ। वे इसके लिये तैयार न थे। अतः उनके रोष की मात्रा का पारावार न रहा। इसी के आवेश में उन्होंने कई एक स्थानों पर दुर्घटनायें कीं। इधर से सरकार की ओर से भी दमन शुरू हो गया। इस संघर्ष में करोड़ों रुपयों की हानि हुई और सैंकड़ों जानें गईं।

महात्मा जी को आग़ा ख़ां के महल में नज़रबंद किया गया। वहीं पर आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूराबाई का देहान्त हो गया। श्रीमती जी यद्यपि बहुत पढ़ी लिखी न थीं तो भी कुलांगनाओं के सब गुण उनमें विद्यमान थे। महात्मा जी को उनकी मृत्यु से बहुत दुःख हुआ। वहीं आग़ा ख़ां के महल में उनकी समाधि बनाई गई। महात्मा जी के भक्तों ने उनका स्मारक खड़ा करने के लिए चंदे की अपील की। इस काम के लिए लगभग डेढ़ करोड़ रुपये जमा हो गए।

सन् १९४५ में महासमर का अन्त हो गया। भारतीय नेता अभी जेलों में ही बंद थे। इनकी मुक्ति के लिए देश भर में आंदोलन शुरू हो गया। लार्ड वेवल जो उस समय वायसराय थे, ब्रिटिश सरकार से परामर्श करने को इंगलैंड गये और परामर्श कर लौटते ही उन्होंने गांधी जी और दूसरे नेताओं को छोड़ कर उनसे फिर समझौते की बात चीत शुरू कर दी। पर इस बात-चीत का फल भी कुछ न हुआ।

भारतीय नेता भारत-स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध थे। ब्रिटिश-सत्ता भी चर्चिल के अनुदार दल के हाथ से निकल कर लेबर-दल के पास आ चुकी थी। लेबर दल भारतीयों को स्वतंत्रता देने को प्रणबद्ध था। अतः शासन की बागडोर संभालते ही ब्रिटिश पार्लियमेंट ने सब दलों के कुछ सदस्यों को यहां की स्थिति का स्वयं अध्ययन करने के लिए भेजा। उन्होंने कुछ समय लगातार यहां की स्थिति का अध्ययन किया और सब ने मिलकर और पृथक पृथक् भी महात्मा जी से कई बार परामर्श किया। विलायत लौट कर उन्होंने पार्लियामेंट के सामने अपने विचार रखे। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश आमात्य मंडल के तीन मुख्य सदस्य, भारत-सचिव श्री पैथिक लारेंस, क्रिप्स साहिब और अलैगजेण्डर साहिब यहां आये। तीन मास से अधिक काल तक वे यहां रहे। महात्मा जी से उनकी दर्जनों बार बात-चीत हुई। परन्तु इस समय भी मुस्लिम लीग के प्रधान श्री जिन्ना साहिब और कांग्रेस में वे समझौता न करा सके। अन्त में उन्हें अपना ही निर्णय देना पड़ा। उनकी विधान-योजना को कांग्रेस ने, महात्मा जी के परामर्श ले, स्वीकार कर लिया।

महात्मा जी के जीवन की लम्बी कहानी को इन थोड़े से शब्दों में यहां रखा गया है। यह केवल दिग्दर्शनमात्र है। महात्मा जी से एक दिन किसी श्रद्धालु भक्त ने पूछा—महात्मा जी, आपने अपने जीवन का सर्वोत्तम काम किसे माना है? आपने उत्तर दिया—खादी और हरिजनकार्य को मैं सर्वोत्तम मानता हूँ। जब आप से पूछा गया कि अहिंसा और सत्याग्रह? तो आपने उत्तर दिया—हां, ये भी हैं, परन्तु अहिंसा मेरे हरएक काम में ओत-प्रोत है और मेरी माला के मनकों में धागा है। और सत्याग्रह, जिसका आधार भी अहिंसा है मेरी कार्यसिद्धि का एकमात्र अमोघ साधन है।

महात्मा जी की यह बात थी भी ठीक। जब सारा संसार अस्त्र-शस्त्रों का भीषण गर्जन सुनकर 'त्राहि-त्राहि' पुकार रहा हो, जब विज्ञान नये से नये टैंक, आकाश से आग बरसाने वाले गोले, परमाणुबंब और इनसे भी शायद भीषणतर पदार्थों का आविष्कार करने में व्यस्त हो, जिनसे लाखों की बस्ती क्षण में श्मशान बन सकती है, जब भाई भाई के खून का प्यासा हो कर उसके हृदय में जिसमें अपने ही माता पिता का रक्त बह रहा है, छुरा घोंपने से ज़रा भी नहीं हिचकिचाता हो, जब स्वदेश के नाम पर खून की नदियां बहाना स्वदेशभक्ति और गौरव समझा जाता हो, जब मानव हिंसक-पशुओं का स्वभाव अपनाते गर्व मानता हो, ऐसे अन्धकार के समय में अहिंसा और सत्याग्रह का सन्देश लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरना महात्मा जी का वह कार्य है जिनके लिए उन्हीं

का नहीं अपितु सारे भारत और एशियाखंड का मुख उज्ज्वल रहेगा। दक्षिणी अफ्रीका में एक ओर उस देश की सारी सत्ता और उसका सैनिक बल था और दूसरी ओर मुट्ठीभर हड्डियों को उठाये हुए एक निर्बल देह ! विजय किस की हुई ?

इसी प्रकार अपने देश में भी महात्मा जी उसी सत्याग्रह और अहिंसा के अस्त्र को उठाये एक बड़ी राजसत्ता का, जिसका लोहा सारा संसार मान चुका है और जिसकी शक्ति दिग्विजयों से और भी बढ़ चुकी है साम्मुख्य करते रहे। उस शक्ति के सामने पाशविक बल और विज्ञान द्वारा आविष्कृत शस्त्रास्त्रों का बल कुण्ठित हो गया और आप विजय के बाद विजय पाकर इन आदर्शों की अमोघता की घोषणा करते रहे।

लोग विस्मित थे और उनकी समझ में भी यह नहीं आता था कि अहिंसा का आश्रय सदा किस तरह लिया जा सकता है। इसका एकमात्र उत्तर यह है कि किसी भी सिद्धान्त की सच्चाई उसके फल से जानी जाती है। अहिंसा और सत्याग्रह में कितनी शक्ति है इसका प्रमाण पश्चिमोत्तर प्रान्त के पठान हैं। कितने उग्र और हिंसक थे वे लोग ! परन्तु महात्मा जी के प्रभाव में आकर वे और उनके नेता श्री अब्दुल गफ्फारखां, उनके भाई खान-साहिब और असंख्य दूसरे लोग हिंसक प्रकृति को मानो भूल ही गये। इसीसे उन्हें विजय के बाद विजय प्राप्त होती रही। महात्मा जी का विश्वास था और योरप के असंख्य विचारशील व्यक्ति भी अब इसी विचार को अपना रहे हैं कि संसार में शांति बलप्रयोग से नहीं, अहिंसा के प्रचार से हो सकती है।

हरिजन-कार्य

अस्पृश्यता हिन्दू समाज के माथे पर कलंक का टीका है। नीच कर्म करने वाली असंख्य जातियां इस समाज से बहिष्कृत सी होकर इसके अत्याचारों को सहन कर रही हैं। परन्तु सहनशीलता की भी सीमा होती है। अन्त में निराशा और असहनशीलता से बाधित होकर इन लोगों ने अन्य जातियों का आश्रय लेना आरम्भ किया।

स्वामी दयानन्द ने इस बुराई के कुपरिणाम को समझा था और इसके विरुद्ध प्रबल आवाज़ उठाई थी। परन्तु उन्हें बहुत सफलता नहीं मिली। तो भी बीज रोपा जा चुका था।

महात्मा जी ने जब हरिजन-उद्धार का काम अपने हाथ में लिया तो एकदम इसके विरुद्ध आवाज़ें उठीं। आपको बुरा-भला भी कहा गया, पर आप पीछे हटने वाले न थे। आप कहा करते थे कि हरिजनों को हमने बहुत कष्ट दिये हैं। अब उनके उद्धार द्वारा अपने पापों का प्रायश्चित करके ही हम उऋण हो सकते हैं।

द्वितीय गोलमेज़ कान्फ्रेंस के बाद श्री मैकडानल्ड साहिब ने भारतशासन सुधार के सम्बन्ध में जो निर्णय दिया था उसमें हरिजनों को हिन्दुओं से अलग प्रतिनिधित्व दिया गया था। यह हिन्दुओं के विरुद्ध एक बड़ा भारी षडयन्त्र था। इससे छै करोड़ हिन्दू अपने धर्म से अलग हो जाते थे। महात्मा जी ने जब जेल में यह समाचार पढ़ा तो उनका माथा ठनका। वहीं से उन्होंने अपने अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया। आमरण अनशनव्रत धारण कर लिया। देश में कोलाहल मच

गया। अन्त में आपकी बात मान ली गई, हरिजनों की गणना हिन्दुओं में ही की गई।

जेल से छूट कर आपने 'हरिजनसेवासंघ' की स्थापना की। इसके द्वारा अब बहुत कार्य हो रहा है। इधर हरिजनों में भी पर्याप्त जागृति उत्पन्न हो गई है। अब उनकी पुरानी विवशता की दशा नहीं रही। वे स्वाधिकार प्राप्ति के लिये संघर्ष करने लग गये हैं। इसमें उन्हें कुछ सफलता भी मिली है, परन्तु पूर्ण सफलता प्राप्ति में कुछ और समय लगेगा। सदियों की पुरानी प्रथाओं को तोड़ने के लिए समय चाहिए।

हरिजन-सेवा की ओर प्रवृत्ति महात्मा जी के हृदय में बचपन में ही जागृत हो चुकी थी। आपके मेहतर का नाम ऊका था। जब वह मल साफ करने आता तो आपकी माता जी आपको उसे छूने से रोकतीं। उस समय भी आपके हृदय में ये विचार मंथन करते रहते कि जो मल हमारे अन्दर से निकलता है उसे छूते तो हम अस्पृश्य नहीं होते, परन्तु जब उसे दूसरा छूता है तो वह क्यों अस्पृश्य माना जाता है। यही भाव आपके हृदय में अंकुरित होते रहे। आज से पैंतालीस वर्ष पूर्व जब आप राजकोट में प्लेग के दिनों में सेवा के लिए गये थे तो आपने अछूत बस्ती में ही काम करने का भार अपने ऊपर लिया था। आपके आश्रम में भी मल आदि साफ करने का काम सब स्वयं करना पड़ता था। जब कभी आपको बम्बई अथवा दिल्ली में जाना होता था तो वहां हरिजनों की बस्तियों में ही निवास करते थे।

जब तक आप जीवित रहे आपने हरिजन-उद्धार के कार्य को अपने

मुख्य उद्देश्य बनाया हुआ था। आप कहा करते थे कि जब ईश्वर ने मेरे कंधों पर यह बोझा लादा है तो वह मुझे इसे सहन करने और काम पूरा करने की शक्ति और आयु भी अवश्य प्रदान करेगा। जहाँ कहीं आप जाते थे, जहां कहीं आपकी गाड़ी खड़ी होती थी, प्रथम कार्य जो आप करते थे वह यह था कि दर्शकों से, जिनकी संख्या सदा हज़ारों की रहती थी हरिजन-सेवासंघ के लिए दान मांगते थे।

खादी-प्रचार

खादी-प्रचार महात्मा जी के जीवन का दूसरा लक्ष्य था। आप खादी को दरिद्र-नारायण-अर्थात् ग़रीबों की पालना करने वाली कहा करते थे। खादी के प्रचार में महात्मा जी की बहुत दूरदर्शिता प्रकट होती है। इससे एक तो अपने देश के निर्धन किसानों और जुलाहों की वृत्ति चल रही है और दूसरे विदेशी कपड़े की बिक्री को बहुत धक्का लगा है। जो खादी पहले कुछ निर्धन किसानों और मज़दूरों के ही तन पर रहती थी, अब वह धनाढ्य से धनाढ्य पुरुष के शरीर की भी शोभा बढ़ा रही है। प्रत्येक प्राणी इसके पहनने में अपना सौभाग्य समझता है। कांग्रेस के प्रत्येक सभासद को इसका धारण करना अनिवार्य ठहराया गया है। महात्मा जी स्वयं प्रतिदिन चरखा कातते थे। खादी प्रचार के लिए आपने एक अलग विभाग खोला हुआ था जिसका निरीक्षण आप स्वयं करते थे। इसके प्रचार के कारण स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार को भी विशेष प्रोत्साहन मिला है।

ईश्वर-विश्वास

महात्मा जी की ईश्वर में अटल भक्ति थी। गीता के उपदेश के अनुसार आप जो भी काम करते थे उसे निष्काम रूप से करते थे। यदि आप के परिवार में किसी को ज्वर आता था तो उसमें ईश्वर का ही हाथ होता था। और यदि वह छूटता था तो उसमें भी ईश्वर का ही हाथ होता था। आपको अन्तरात्मा से ईश्वर की प्रेरणा जब तक नहीं मिलती थी, आप किसी काम को हाथ में नहीं लेते थे। यदि आपको किसी कार्य में सफलता होती थी तो उसका सेहरा ईश्वर के ही गले में पहनाया जाता था। आपने लगभग दस-बारह छोटे-बड़े उपवास व्रत धारण किये थे, उन सबको आपने तभी आरंभ किया था जब आपको यह निश्चय हो गया था कि ईश्वरेच्छा यही है। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर आप ईश्वर से प्रार्थना करते थे, और दिन के अवसान में निद्रा देवी की गोद में जाने से पूर्व भी ईश्वर-प्रार्थना करते थे। सेवाग्राम में अथवा जहां कहीं भी आप जाते थे वहां ईश्वरभक्ति का स्रोत बहा देते थे। इसीसे आप में अपार आत्मिक बल था।

आज भारत के गांव-गांव में, शहर-शहर के कोने-कोने में महात्मा जी का संदेसा बिजली की तरह पहुँच चुका है। बच्चा-बच्चा आप के नाम से परिचित है। लोग आपको 'महात्मा जी' 'गांधी बाबा' 'गांधी महाराज' और 'बापू' इन नामों से पूजते हैं और मन्नतें मानते हैं। इन दिनों में एक दो जगह मन्दिर बनवा कर आपकी मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं,

यद्यपि आपने इसका विरोध किया है । आपके दर्शन को सभी तरसते थे, उसके लिए बीस पच्चीस कोस पैदल चल कर आते थे। वे आपके चरण छूते थे और उनकी रज को माथे पर चढ़ाते थे। महात्मा जी बारम्बार उन्हे कहते थे—'भाई, मैं साधु नहीं, सिद्ध नहीं, साधारण गृहस्थ हूं, तुम लोगों जैसा। मेरे बाल हैं, बच्चे हैं, संसार की मोह-माया में तुम लोगों-जैसा फंसा हुआ हूं ।' पर मानता कौन था! कर्नल वेजवुड ने एक जगह कहा है कि महात्मा जी ज़रा हाथ उठाकर असीस दें और लाखों जानें उन पर निछावर हो जायें । परन्तु अहिंसा के सच्चे अवतार महात्मा जी ऐसा कब करने वाले थे !

महात्मा जी भारतवर्ष के बिना मुकुट के सम्राट् थे । बुद्ध हुए, ईसा हुए और कई भाग्यशाली व्यक्ति हुए, पर उनमें से किसी को भी अपने जीवन में इतना मान नहीं मिला जितना आपको अपनी आंखों से देखना मिला था। आपके हज़ारों नहीं लाखों शत्रु होंगे, परन्तु किसी को भी आपकी आत्मिक शुद्धता और सत्यता पर आक्षेप करने का अवसर नहीं मिला।

'गांधी जी परस्पर विरोधी गुणों का एक अनोखा संमिश्रण थे। अत्यन्त सरल, फिर भी अत्यन्त दृढ़, अतिशय मितव्ययी पर अति उदार थे ! आपके विश्वास की कोई सीमा नहीं, फिर भी आपको बेमौके अविश्वास करते पाया गया है। गांधी जी का रूप इतना आकर्षक नहीं था तो भी आपके शरीर, आंखों और हरएक अवयव से दैवी सौन्दर्य और तेज की आभा टपकती थी। आपकी

खिलखिलाहट ने न मालूम कितने लोगों को मोहित कर दिया था। ....किसी ने गांधी जी को केवल बापू के रूप में ही देखा है, किसी ने महात्मा के रूप में, किसी ने एक राजनैतिक नेता के रूप में और किसी ने एक बाग़ी के रूप में।'

महाभारत के युद्ध से पूर्व भारत उन्नति के चरम शिखर पर आरूढ़ था। हर प्रकार की विद्याओं का यह केन्द्र था। परन्तु महाभारत के युद्धानल में वीरता के साथ सब की सब विद्यायें भी स्वाहा हो गईं। उन्नति से गिरता गिरता यह अवनति के गहनतम गर्त की ओर जाने लगा। बीच में कई राजे हुए, महाराजे हुए, चक्रवर्ती सम्राट् हुए, पर कोई भी इसके आन्तरिक रोग का जो यक्ष्मा की तरह इसे अन्दर ही अन्दर काट रहा था, निदान और उपचार न कर सका। वे सब अपने अपने सीमित क्षेत्र के अन्दर ही कुछ सफलता या विफलता को पाकर विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये। अशोक भी चला गया, चन्द्रगुप्त भी चला गया, पर भारत वही रहा।

इसके बहुत समय बाद विदेशियों के आक्रमण शुरू हो गये— पहले मुसलमानों के फिर युरोपियनों के, इससे इसकी दशा और भी बिगड़ गई। सारा भारत जो एकसूत्र में बंधा था, बंधनों के टूटने पर बिखरने लगा। अंग्रेज़ों ने इसे एकसूत्र में तो बांधा पर उनका उद्देश्य और था। इधर गृहकलहों से ही इसको मुक्ति नहीं होती थी, इसलिए उन्नति का विचार करने का इसे अवसर ही न मिलता था।

जब देशों के इतिहास में ऐसे अवसर आते हैं तो परमात्मा

किसी न किसी ऐसे महापुरुष को भेजते हैं, जो मंझधार में चक्कर काटती हुई देश की नाव को किनारे लगाने की सामर्थ्य रखता हो। महात्मा जी ऐसे ही ईश्वरप्रेरित व्यक्ति थे। जब आप कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे तो भारत के वास्तविक निवासियों की दशा अवर्णनीय थी। इनकी देह के सारे अंगों को भयंकर-रोग शारीरिक, राजनैतिक और सामाजिक, ग्रस्त किये हुए थे।

महात्मा जी ने इन रोगों का ध्यान से निरीक्षण किया। फिर उन्हें दूर करने के लिये कटिबद्ध होकर आप मैदान में आगये और आ-जीवन उनका मुकाबला करते रहे। सब संघर्षों में आपको पूर्ण विजय मिली है। भारत-माता का सौभाग्य है कि उसकी कोख ने ऐसे पुत्ररत्न को जन्म दिया है। आप सदा कहते रहते थे कि मुझे एक सौ पच्चीस वर्ष तक जीना है। और निसन्देह उतने काल तक जीवित रहने की आप में सामर्थ्य थी, क्योंकि जैसी सात्विक वृत्ति का आप अवलम्बन कर रहे थे, जैसे आर्य-आदर्शों पर आपका जीवन-क्रम चल रहा था, उन्हीं का अनुसरण कर हमारे पूर्व पुरखा, ऋषि-महर्षि कई कई सौ सालों तक जीवित रहते थे, परन्तु जो आपको इष्ट था वह ईश्वर को अभीष्ट न था। आप शायद जिस कार्य को सम्पादन करने के लिये भूतल पर अवतीर्ण हुए थे वह पूर्ण हो चुका होगा, अतः आपको ईश्वर ने पुनः अपने पास लौटा लिया।

तीस जनवरी, सन् उन्नीस सौ अड़तालिस के सायं का समय था, लगभग साढ़े पांच बजे थे। आप नैत्यिक कार्यक्रम के अनुसार प्रार्थना-स्थान की ओर पधार रहे थे। भक्तजनों का एकत्रित समुदाय आपकी बाट

जोह रहा था। आपका दर्शन पाते ही सैकड़ों कंठों से 'महात्मा गांधी की जय' के गगनभेदी नारों से जिस समय आकाशमंडल गूंजा ही था कि उसी क्षण पिस्तौल के कई वारों की आवाज़ सुनाई दी। देखते ही देखते आपकी देह लोहू से लथपथ भूमि पर लुड़क पड़ी। उस समय भी आपको अपने इष्टदेव राम का ही स्मरण आया और 'हाय राम' इन शब्दों के साथ प्राण विसर्जन किया। पिस्तौल चलाने वाला एक नाथूराम विनायक गोड़से नामक महाराष्ट्र युवक था जो दुष्ट इस कुत्सित कर्म के लिये बंबई से चल कर आया था।

कुछ ही क्षणों में इस दुर्घटना का समाचार जंगल की आग की तरह संसार के कोने कोनेतक पहुंच गया। महात्मा जी के भक्त, कांग्रेस के मुख्य मुख्य कार्यकर्त्ता, भारतीय प्रान्तों के मन्त्री और अन्य उच्च कर्मचारी प्रातः से पहले ही बिड़ला भवन में, जहां यह घटना हुई थी, पहुंच गये। उस ओर जाने वाले सब मार्गों पर जनसमूह का एक अपार सागर उमड़ा हुआ जान पड़ता था। सबके मुख उदास थे, आंखों में आंसू थे। यह घटना ऐसी आकस्मिक थी अतः उसकी सत्यता में लोगों को संदेह था।

इकतीस जनवरी के प्रातः ठीक नियत समय पर महात्मा जी की शवयात्रा आरंभ हुई। भारत-सरकार ने, जिसके कि वे आधारस्तंभ थे, भारतीय जाति ने जिसके कि वे निर्माता थे, आपकी इस अन्तिम यात्रा का जो भी सत्कार संभव और उचित था किया, अर्थी के साथ भारत के गवर्नर जनरल श्री माउंट बेटिन साहिब, अन्यान्य देशों के प्रतिनिधि दूत, कई राजे-महाराजे, कांग्रेस के उच्च पदाधिकारी और

कर्मचारी, भारतीय सेना के विविध अध्यक्ष और अ नसमुदाय-सबके सब पैदल चल रहे थे। सड़क के दोनों ओर म्लानमुख जनता की अपार भीड़ चुप-चाप खड़ी थी। जगह जगह पर अर्थी पर पुष्प-वर्षा की गई। इस प्रकार लगभग चार-पांच घंटों में पांच-छै मील के मार्ग को तय करती हुई आपकी अर्थी यमुनाघाट पर पहुंची। वहां भी जनता इतनी भारी संख्या में उपस्थित थी जितनी में पहले कभी भी भारत के इतिहास में ऐसे अवसर पर उपस्थित न हुई थी। वहां पर महात्मा के प्रिय मंत्र 'रघुपति राघव राजा राम पतितपावन सीता राम' की लाखों कंठों से निरन्तर उच्चारित रामधुन में आपकी देह को चंदनचिता पर रखा गया, और कुछ ही क्षणों में अग्नि की धक् धक् करती हुई ज्वालाओं में वह जल कर भस्मावशेष रह गई। कैसी विधि विडम्बना है कि जिस महान व्यक्ति की उंगली का एक इशारामात्र ही लाखों, करोड़ो हृदयों को हिला देने की क्षमता रखता था, उसका यह अवसान! पर और हो भी क्या सकता है! संसार में जो भी आया बड़ा या छोटा, उसका यही अवसान हुआ है और आगे को भी होगा। यही तो सांसारिक माया है। भस्मान्तं शरीरम्।

महात्मा जी की मृत्यु पर संसार के सब देशों में जितना शोक और विषाद प्रकट किया गया उतना पहले कभी किसी व्यक्ति की मृत्यु पर नहीं प्रकट किया गया था। दूर दूर देशों के शासकों, प्रधान मंत्रियों और दूसरे गण्य-मान्य व्यक्तियों से भेजे हुए समवेदना के हज़ारों तार, पत्र और सन्देश आपके सम्बन्धियों और सहकारियों को मिले। सबका सारांश यही था कि आपकी मृत्यु से जो क्षति संसार को हुई है वह पूरी होने को नहीं। और यह बात वस्तुतः सत्य भी है।

संसार के वर्तमान अशान्त वातावरण में, जब कि प्रत्येक राष्ट्र दूसरे का विध्वंस करने को उद्यत है, जब एक से एक बढ़ कर शारंनाशिक अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कार में व्यग्र है, जब ऐटम बांब के मुकाबले में ऐटम बांब, तोपों के मुकाबले में तोपें, हवाई जहाज़ों के मुकाबले में अधिक बड़े और शीघ्रगामी हवाई जहाज़ और इसी प्रकार के कई अन्य जनविध्वंसक पदार्थ नित्य नये से नये आविष्कृत हो रहे हैं, ऐसे वातावरण में महात्मा जी ही केवलमात्र अहिंसा और शान्ति का पाठ पढ़ा रहे थे। पिछले दो विश्वव्यापी युद्धों से भयभीत संसार भर की आंखें आपकी ओर लगी हुई थीं। उन लोगों का विचार था कि जिस पवित्र भूमि ने बुद्ध और गांधी जी जैसे शान्तिप्रिय उच्च व्यक्तियों को जन्म दिया है, वहीं से संसार को शांति का संदेश मिल सकता है। महात्मा जी के उठ जाने से उन लोगों की आशाओं पर पानी फिर गया।

महात्मा जी की कीर्ति और कार्य को शाश्वत रूप देने के लिये कांग्रेस ने उनका कोई उपयुक्त स्मारक खड़ा करने के लिए धन एकत्र करने की अपील की हुई है। उस स्मारक का क्या रूप होगा इसका निश्चय अभी तक नहीं हुआ।

महात्मा जी के अस्थिचय को प्रयाग में त्रिवेणी में प्रवाहित किया गया। अस्थिवाहिनी रेलगाड़ी का मार्ग में प्रत्येक स्टेशन पर अपूर्व समारोह से सत्कार किया गया। भस्मावशेष को कई भागों में बांट कर भारत के सब तीर्थों, नदियों, पवित्र जलाशयों, सरोवरों और समुद्र में प्रवाहित किया गया। उसका कुछ भाग बाहर के देशों में, वहां के

निवासियों के अनुरोध पर भेजा गया। सर्वत्र उसका बहुत आदर किया गया और लोगों ने उसके दर्शन कर अपने आपको धन्य माना।

महात्मा जी अब हमारे मध्य में नहीं हैं, परन्तु जिस मार्ग पर वे हमें चला गये हैं, जिन तत्वों का वे हमें उपदेश कर गये हैं, उनका अनुसरण करने से हमारा उद्धार निश्चित है। वे अब कहने को तो नहीं हैं, पर सदा हमारे साथ हैं, हमारे हृदयासनों पर विराजमान हैं।

महात्मा जी के जीवन की कुछ रोचक घटनायें

(१)

दक्षिणी अफ्रीका के आँदोलन के समय कुछ गोरे लोगों ने मज़दूरों पर गोली चला कर उनके प्राण ले लिये। जेल से छूट कर जब महात्मा जी को इस बात का पता लगा तो आपने दो बार फलाहार के स्थान पर एक बार फलाहार शुरू कर दिया। एक धोती और कुरते को छोड़ कर सब वस्त्र भी त्याग दिये और संन्यास वृत्ति को धारण कर लिया। इससे स्पष्ट है कि आपको दूसरे के कष्टों से कितना दुःख होता था!

(२)

सत्याग्रह के दिनों में अफ्रीका के कुछ लोग महात्मा जी को कत्ल करने की घात में रहते थे। जब आप के एक मित्र कैलेनबेक को इस बात का पता लगा तो वह एक भरी हुई पिस्तौल जेब में छिपाये आपकी रक्षार्थ आपके साथ रहने लगा। आपको जब इस बात का पता लगा

तो आपने उस मित्र को खूब फटकारा और कहा कि यदि मैं तमंचों से ही अपनी रक्षा करना चाहता तो इस संघर्ष की क्या आवश्यकता थी। आपके मित्र ने तमंचे को वहीं फेंक दिया और आपसे क्षमा मांगी। इससे ज्ञात होता है कि अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए आप जान की भी परवाह नहीं करते थे।

(३)

एक बार आपकी धर्मपत्नी कस्तूराबाई बीमार हो गईं। बहुत इलाज किये परन्तु स्वास्थ्य न मिल रहा था। इस पर आपने कहा कि यदि तुम नमक खाना छोड़ दो तो स्वस्थ हो जाओगी। वे बोलीं--भला नमक न खाने से कैसे काम चलता है! आपने उनसे कहा--यह भी कोई बड़ी बात है! लो! आज से मैंने नमक खाना छोड़ा। तब से आपने नमक नहीं खाया। देखिये, आप प्रणपालन में कितने दृढ़ थे!

(४)

महात्मा जी विद्यार्थियों को दंड देने के विरुद्ध थे। एक बार आपका कहना न मानकर कुछ विद्यार्थियों ने कोई बुरा काम कर दिया। आपको इस पर रोष हुआ और किसी विद्यार्थी को दंड न दे कर अपने ही गालों पर दो तीन तमाचे लगा दिये और यह कहने लगे कि मुझ में ही कुछ दोष है कि मेरी शिक्षा का असर विद्यार्थियों पर नहीं हो रहा।

(५)

एक समय ट्रांसवाल की सरकार ने कुछ भारतीयों को निर्वासन दे दिया। वे लोग अपने अपने घरों को चले गये। परन्तु उनके परिवार के लोग वहीं रहने लगे। महात्मा जी इनकी देख भाल किया करते थे। सवेरे उठ कर विद्यार्थियों को पढ़ाते और सबका पाखाना अपने हाथों से साफ़ करते थे। फिर सबके मैले कपड़े लेकर स्वयं धोते, सुखाते और ले जाकर उन्हें लौटा देते थे। आपका विचार था कि निर्वासित बन्धुओं के पीछे किसी भी स्त्री वा पुरुष को कोई कष्ट न हो।

(६)

दक्षिणी अफ्रीका में गांधी जी एक दिन फर्स्टक्लास में रेल की यात्रा कर रहे थे। उन दिनों भारतीयों को 'कुली' कहा जाता था और उन्हें केवल मालगाड़ी में ही यात्रा करने का आदेश था। गार्ड ने आपको मालगाड़ी में बैठने का आदेश किया। परन्तु आप नहीं माने क्योंकि आपके पास फर्स्टक्लास का टिकट था। इस पर गार्ड ने एक गोरे सिपाही की सहायता से आपका असबाब प्लेटफार्म पर फेंकवा दिया। आपने ज़रा भी बुरा न माना और मालगाड़ी में जा बैठे। आपका असबाब स्टेशन पर ही रह गया और गाड़ी छूट गई।

(७)

एक बार आप घोड़ा-गाड़ी में जा रहे थे। गाड़ी का मुखिया चुरुट बहुत पीता था। दम लगाता हुआ वह आपके पास आया और उसने आपको हट कर बैठने को कहा। आपने जब उसका कहना न माना तो उसने ज़ोर से आपको एक थप्पड़ मारा और आपकी जगह ले कर बैठ गया।

(८)

एक दिन गांधी जी सड़क की पटरी पर चल रहे थे । एक सिपाही ने पीछे से आकर आपको लात मारी और गला दबा कर ज़ोर से धकेल दिया।

इन उपरोक्त घटनाओं से सिद्ध होता है कि ऐसे दुर्व्यवहारों के समय भी आपने कभी अहिंसा, धैर्य और शान्ति को नहीं छोड़ा।

(९)

चम्पारन में एक तालाब के पास ही लोग शौच कर स्थान को गंदा कर देते थे। महात्मा जी ने उनकी इस बुरी बान को छुड़ाना चाहा। आपने एक दिन प्रातः उठकर टोकरी और फावड़ा उठा लिया और तालाब पर चले गये। जब लोग शौच करके उठते तो आप टोकरी और फावड़ा लेकर वहां पहुंच जाते और उस स्थान को साफ कर देते। इस पर उन लोगों को लज्जित होना पड़ा और फिर किसी ने कभी वहां मलत्याग नहीं किया।

(१०)

बचपन में गांधी जी एक मित्र की सोहबत से लुक छिप कर मांस खाने लग गये थे। परन्तु लुक छिप कर खाना इन्हें अखरता था इसलिए मन ही मन इसे बुरा समझते थे। मांस के साथ और दुर्व्यसन भी जारी हो गये। आप तम्बाकू पीने लगे और तम्बाकू खरीदने के लिए पैसे चुराने लगे। एक दिन आपके मन में विचार उठा कि मैं पाप कर रहा हूं, इसलिए पिता जी से कह कर इसका प्रायश्चित करना चाहिए। झट आपने एक पत्र में सभी कुछ लिख कर उसे पिता जी को दिया। इस पर आपके पिता प्रेमाश्रु बहाते हुए आपसे बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन से आपने कोई व्यसन नहीं किया।

(११)

अफ्रीका लौटते समय आपको पता लगा कि वहां के गोरे लोग आपको तंग करने को उद्यत हैं। जहाज़ के कप्तान ने आपसे रात को उतरने को कहा, पर आप नहीं माने। आपने कहा कि ईश्वर मुझे शक्ति देगा कि मैं उन्हें क्षमा कर सकूं क्योंकि वे लोग अज्ञान से ऐसा कर रहे हैं। जब आप उतरे तो उन लोगों ने आपसे बहुत बुरा बर्ताव किया। आपकी पगड़ी उतर गई और ऊपर से मुक्के और डंडे बरसने लगे। पास ही पुलिस के कप्तान की स्त्री सब कुछ देख रही थी। उसने आपकी रक्षा की।

(१२)

गांधी जी बचपन में भूत से डरा करते थे, इसलिए अंधेरे में कहीं न जाते थे। एक दिन आपकी नौकरानी रम्भा ने कहा कि 'रामनाम' लेने से भूत भाग जाता है। तब से आप 'रामनाम' लेने लगे और आमरण राम के पूरे भक्त रहे। 'रघुपति राघव राजा राम पतितपावन सीताराम।' की रट लगाते रहते भारत में 'रामराज्य' लाने का यत्न करते रहे।

(१३)

गांधी जी के एक भक्त ने आपको लिखा कि मुझे रात के स्वप्न में श्री कृष्ण ने कहा है कि आपसे कहूँ कि अब आपका अन्त समय निकट है, अतः सब काम छोड़ कर ईश्वर-भजन में ही मन लगायें। आपने उसे लिखा —'भाई, मैं तो एक पल के लिए भी ईश्वर-भजन को नहीं भूलता। मेरे लिए लोकसेवा ही ईश्वर-भजन है।'

(१४)

गांधी जी का दूसरा लड़का माणिकलाल बीमार हो गया, बहुत यत्न करने पर भी ज्वर नहीं उतरता था। डाक्टर ने उसे अण्डे और मुरगी का शोरवा देने को कहा। इससे आपके सामने एक भारी समस्या आ खड़ी हुई। अंडे और मुरगी का प्रयोग आपके घर में कभी नहीं हुआ था। एक ओर लड़के की जान थी दूसरी ओर धर्म। आपने सोचा मनुष्य की धर्मप्रियता की परख भी तो ऐसे ही समय में होती है। मैं अपना धर्म क्यों छोड़ूं। आपने डाक्टर की

अनुमति से माणिकलाल का लूईकोनी की चिकित्साविधि के अनुसार उपचार शुरू कर दिया। साथ ही राम को स्मरण किया। थोड़े ही समय पसीना आ गया और ज्वर उतर गया। आपने ईश्वर का धन्यवाद किया कि उसने आपको धर्मच्युत नहीं होने दिया।

(१५)

एक दिन आप रेलयात्रा को चले। आप तीसरे दर्जे में यात्रा करते थे, परन्तु वहाँ बहुत भीड़ थी। आप एक कुली को कुछ दे दिला कर एक डिब्बे में घुस गये। वहां आदमी पर आदमी गिर रहा था। रात का समय था, पर बैठने को स्थान न था, अतः आप खड़े रहे। जो ताकतवर थे उन्होंने अपना स्थान बना लिया था और कुछ सो भी गये थे। परन्तु आप खड़े ही रहे। सारे लोग हैरान थे कि दूसरे लोगों ने तो लड़-झगड़ कर स्थान ले लिया है परन्तु यह विचित्र मनुष्य है कि बोलता तक नहीं। अन्त में एक मनुष्य ने आपका नाम-धाम पूछा। जब लोगों को पता लगा कि आप गाँधी जी हैं तो वे अतिलज्जित हुए और आपको बैठने के लिये ही नहीं अपितु आराम से सोने के लिये भी स्थान दे दिया।

(१६)

जब गांधी जी लंदन जा रहे थे तो उसी जहाज़ में एक गोरा भी यात्रा कर रहा था। वह आपको प्रतिदिन एक दो गालियां

सुना जाया करता था। एक दिन उसने आपपर एक व्यंग्यपूर्ण कविता लिखी और आपके पास ले आया। आपने जिन पन्नों पर वह लिखी थी उन्हें फाड़ कर एक टोकरी में फेंक दिया और उस सुई को जिससे पन्ने जुड़े थे, जेब में डाल लिया। उसने कहा—'गांधी, पढ़ो तो, इस कविता में बहुत सार भरा है।' आपने कहा—'मेरे लिये जो सार की चीज़ थी वह मैंने ले ली है।' इस पर सब लोग हंस पड़े और वह लज्जित होकर चला गया।

(१७)

दिल्ली के पास एक मरणासन्न रोगिणी को मृत्यु से पूर्व महात्मा जी के दर्शन की लालसा थी। परन्तु गांधी जी बहुत दूर थे। दो दिन बाद आप कानपुर से अहमदाबाद जा रहे थे। दिल्ली में गाड़ी एक घंटा ठहरती थी। वहां आपको इस बात की सूचना दी गई। आप तुरन्त मोटर में बैठकर उस रोगिणी को मिलने चल पड़े। उसका घर दिल्ली से लग भग दस मील दूर था। आपके दर्शन पा कर स्त्री के आनन्द का पारावार न रहा। उसके जीवन की अन्तिम लालसा पूर्ण होगई। थोड़े दिनों बाद उसकी सन्तुष्ट आत्मा विदा होगई।

महात्मा जी के कुछ विचार

१—जिसका ईश्वर के सिवा और कोइ अवलंब नहीं है, वह जानता ही नहीं कि संसार में पराभव भी कोई चीज़ है।

२—यदि संसार की आत्मा के अस्तित्व का विश्वास हो तो इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मिक बल श्रेष्ठ है। आत्मा की शक्ति के आगे शरीर की शक्ति तृणवत् है।

३—आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना हमारा सब से पहला और आवश्यक कर्तव्य है। आत्मज्ञान चरित्र के द्वारा प्राप्त होता है। चरित्रवान प्राण दे देंगे पर सत्य न छोड़ेंगे। स्वयं मर जायेंगे पर दूसरों को न मारेंगे। स्वयं दुःख उठायेंगे, छटपटायेंगे, परन्तु दूसरों को दुःख न देंगे।

४—अहिंसा का वास्तविक अर्थ यह है कि तुम किसी प्राणी का चित्त मत दुखाओ और जो तुम्हें अपना शत्रु समझता हो उसके प्रति भी अपने हृदय में कोई बुरा भाव न रखो। जो मनुष्य अहिंसा के सिद्धान्त पर चलता है उसका कोई शत्रु रह ही नहीं जाता।

५—जीवनदान सब दानों से बढ़ कर है। जो मनुष्य वस्तुतः जीवन दान करता है वह सब प्रकार की शत्रुता का नाश करता हैं।

६—जहां सत्य और धर्म है वहीं विजय है।

७—मेरा विश्वास है कि धर्मशून्य जीवन सिद्धान्तहीन जीवन होता है, और सिद्धान्तशून्य जीवन बेपतवार के जहाज़ की भांति है।

८—वज्र के समान कठोर हृदय वाला भी आत्मबल की अग्नि में पिघल सकता है।

९—एक ही स्थान पर पहुँचने के भिन्न भिन्न मार्ग हैं, अगर हम भिन्न भिन्न रास्तों से अपने उद्दिष्ट स्थान को जाते हैं तो इसमें हर्ज क्या है।

१०—सत्याग्रही अपने शरीर की परवाह नहीं रखते। वे जिस बात को सत्य मानते हैं उसे छोड़ते नहीं।

११—वीर वही है जो गोलियों की वर्षा में भी अपने स्थान पर खड़ा रहे।

१२—'पश्चिमी सभ्यता निरीश्वरी है और भारत की ईश्वरीय ।' यह समझ कर भारत-भूमि के हितेच्छुओं को अपनी सभ्यता से उसी प्रकार लिपटे रहना चाहिए जिस प्रकार बच्चा माँ से लिपटा रहता है ।

१३—मेरी दृढ़ धारणा है कि कोई मनुष्य उस समय तक बड़ा काम अथवा राष्ट्रोन्नति करने में समर्थ नहीं हो सकता जब तक उसके आचरण सच्चे न हों, और उसके वचनों का मूल्य न हो।

१४—जो लोग जातीय सेवा करना चाहते हों- अथवा- जो लोग वास्तविक जीवन का आनन्द लेना चाहते हों, चाहे वे विवाहित हों या अविवाहित, उन्हें सदा ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिए ।

१५—खाने और बोलने के सम्बन्ध में जिसने जिह्वा की चपलता पर अधिकार जमा लिया उसने मानों सबको अपने वश में कर लिया ।

१६—निश्चय समझिये कि अगर हमारा जीवन संयममय हो जायगा तो हम जो चाहेंगे प्राप्त कर सकेंगे ।

प्राचीन काल में जीवन का आधार संयम था, पर आज कल ऐश-आराम हो रहा है। नतीजा यह हुआ है कि हम निर्बल होकर कायर हो गये हैं।

१७—शिक्षा को जीविका का साधन बनाना नीच काम है। कमाई का साधन शरीर है, फिर आत्मा पर यह बोझ क्यों लादा जाय?

१८—मेरी धारणा है कि हिन्दू-समाजरूपी इमारत के अब तक स्थिर रहने का कारण यह है कि उसकी रचना जातिभेद की नींव पर हुई है। जातिभेद हिन्दूधर्म का बड़ा भारी और मूलमंत्र रहा है।

१९—हमें अस्पृश्यता की कल्पना का दोष धर्म से अवश्य दूर कर देना होगा। इसके बिना प्लेग तथा हैज़े आदि रोगों की जड़ नहीं कट सकती।

२०—यदि हम लोगों में उन भाषाओं के प्रति आदर न होगा जिन्हें हमारी मातायें बोलती हैं तो हमारा राष्ट्र कभी स्वराज्य-भोगी न होगा।

२१—यदि हमको अपनी भाषा से अरुचि हो, अपने कपड़े

अच्छे न लगें, अपना पहनावा-पोशाक बुरी मालूम हो, अपनी चोटी से शरम आवे, अपनी वायु और भोजन अच्छा मालूम न हो, अपने आदमी अपने साथ रहने के योग्य न जान पड़ें, अपनी सभ्यता अच्छी न लगे और विदेशी सब कुछ अच्छा मालूम हो तो फिर स्वराज्य से मतलब ही क्या !

२२—स्वाधीनता और गुलामी मन के खेल हैं। जिसका मन स्वाधीन है वह विष्ठा का टोकरा उठाते भी राजा है।

२३—यदि कोई मनुष्य तुम्हें जल पिला दे और उसके बदले में तुम भी उसे जल पिला दो तो तुम्हारा काम कुछ भी नहीं है। शोभा इसी में है कि अपकार करनेवाले के साथ भी तुम उपकार करो।

२४—हम लोगों ने धर्म की लगन छोड़ दी है। वर्तमान युग के बवंडर में हमारी समाजरूपी नाव नई सभ्यता के तूफान में पड़ी हुई है। कोई लंगर नहीं रहा, इसी से इस समय इधर उधर को डगमगाती वह हमें बहा रही है।

२५—आध्यात्मिक दृष्टि से हमारे देश को तभी वस्तुतः प्राधान्य मिलेगा जब उसमें सुवर्ण की अपेक्षा सत्य की, ऐश्वर्य की अपेक्षा निर्भयता की, स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार की समृद्धि देख पड़ेगी।

२६—केवल अपने पड़ोसियों से ही प्रेम मत कीजिए, केवल मित्रों से ही प्रेम मत कीजिए, बल्कि उन लोगों से भी प्रेम कीजिए जो आपके शत्रु हैं।

२७—धर्म का पालन खांडे की धार पर चलने के बराबर है। लेकिन उसी हिसाब से उसका फल भी बड़ा भारी है। तुमने अपना कर्तव्य पाला ? इसी प्रश्न के उत्तर पर हिन्दुस्तान का भविष्य निर्भर है।

मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद'

मौलाना 'आज़ाद' भारत-माता के उन सुपत्रों में से हैं, जिनका जीवन माता के चरणों में सदा के लिए भेंट हो चुका है, जिन के हृदय में देशसेवा की उमंगें रक्त के प्रत्येक विन्दु के साथ उछल रही हैं, जिन्होंने सांसारिक सुख-दुःखों की परवाह न कर अपने जीवन का उत्तम समय कारा की काली कोठड़ियों में बिता कर मातृभूमि के सेवक होने का पूर्ण परिचय दिया है। जब आपके दूसरे धर्मानुयायी सरकारी छत्रछाया में तरह-तरह के आनन्द, सुख और सम्पत्ति का उपभोग कर रहे हैं, उस समय यह देशरक्षा का सच्चा सैनिक मातृभूमि-सेवा का व्रत धारे हुए कठिन से कठिन यातनाओं को भोग रहा है। ऐसी उच्च आत्मायें जिस देश की निधि हों, उस देश को कौन स्वाधिकार से वञ्चित कर सकता है! मौलाना साहिब भारत के उन इने-गिने महापुरुषों

में से हैं, जिनके जीवन का प्रत्येक भाग देश-सेवा और परोपकार के लिए समर्पित होता है।

तीस बरसों से ये देशसेवा का व्रत लिये उसे प्राण-पण से पाल रहे हैं। जब इनके असंख्य सहधर्मी, विरोधियों की प्रेरणा से सच्चा मार्ग भूले हुए इनके विरुद्ध खड़े हैं तो भी इनकी उन्नत आत्मा के धैर्य और मन्तव्यनिष्ठा का ही यह परिणाम है कि कई चोटी के मुसलमान नेताओं को साथ लिये ये कर्तव्यपथ पर डट कर चल रहे हैं। इनके पथ में अनेकों बाधायें आईं, अनेकों बार इन्हें वध करने की धमकियां दी गईं, और कई प्रकारों से अपमानित करने के उपाय किये गये, परन्तु ये ज़रा भी विचलित नहीं हुए। निरन्तर लक्ष्य पर दृष्टि गड़ाये बढ़ते चले जा रहे हैं।

पूर्वज

मौलाना का सम्बन्ध एक बहुत ऊँचे मुसलमान वंश से है। इनके पूर्वज अतिविख्यात और धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले महापुरुष थे। उनकी कीर्ति इस्लामी जगत् में ख़ूब फैली हुई थी। शेख जमाल-उद्दीन साहिब जिनकी अकबर के दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी, इनके पूर्वजों में से थे। इनकी माता अरबी भाषा के अपूर्व विद्वान् और मक्का शरीफ के मुफ़ती शेख मुहम्मद बिन की भतीजी थीं। वे स्वयं भी अरबी भाषा की पंडिता थीं। इस तरह इनका संबंध एक प्रसिद्ध विद्वान् और विचारशील परिवार से है। इसीका स्वाभाविक परिणाम है कि ये भी इसलामी आकाश में सूर्य की तरह चमक रहे हैं।

आज से कुछ सदियां पूर्व भारत में कुछ उत्साही अंग्रेज़ व्यापार के लिए आये थे। उन दिनों यहां पर कोई ऐसा प्रभावशाली शासक न था जिसका लोहा सारे देश में माना जा सके। समग्र देश छोटे छोटे राज्यों और सूबों में विभक्त हो चुका था। एक की दूसरे से न पटती थी। इस लिए सब में परस्पर लड़ाई-झगड़े चल रहे थे। व्यापारी अंग्रेज़ों ने यहां की आंतरिक अवस्था का अध्ययन किया और कुछ अपनी दक्षता और कुछ यहां की आंतरिक फूट का बड़ी प्रवीणता से लाभ उठाया।

कुछ ही समय में इन्होंने भारत के एक प्रधान भाग पर अधिकार कर लिया और उसके शासक बन गये। इस शासक दल को 'ईस्ट-इंडिया-कंपनी' कहते हैं। इसने यहां पर लगभग सौ साल तक शासन किया है।

इस कंपनी का ध्येय देशका सुशासन इतना न था जितना कि देश की सम्पत्ति को स्वदेश में पहुँचाना था। इससे जनता बहुत असन्तुष्ट थी। साथ ही जिन सैनिकों को इसने अपनी सेना में भर्ती किया था उन्हें भी इसके विरुद्ध कुछ शिकायतें थीं। जनता और इन सैनिकों का असंतोष सन् १८५७ के विद्रोहरूप में भयंकर दावाग्नि की तरह भड़क उठा। विद्रोहियों ने इसमें सन्देह नहीं कि बहुत निन्द्य कार्य किये थे, परन्तु उन्हें दमन करने के लिए जिन साधनों का अवलंबन किया गया था वे उनसे भी कहीं अधिक गर्ह्य थे।

'ईस्ट-इंडिया-कंपनी' की इस दमन-नीति से बचने के लिए मौलाना 'आज़ाद' साहिब के पिता मौलाना ख़ैर-उद्दीन, जो एक

अतिविख्यात और विद्वत्ता-सम्पन्न बंश से सम्बंध रखते थे और स्वयं भी अपने समय के अपूर्व विद्वान् थे, भाग कर मक्का-शरीफ को चले गये। तुर्की के सुलतान श्री अबदुल हमीद खां को इनकी विद्वत्ता का पहले ही पता था, अतः उन्होंने इन्हें अपने पास बुला लिया। बहुत देर तक ये कुस्तुनतुनिया में रहे और वहां पर रहते हुए इन्होने अरबी भाषा में बहुत से उच्च कोटि के ग्रंथ रचे। इससे इनकी विद्वत्ता का सिक्का पहले से भी अधिक जम गया।

सन् १८७२ में मौलाना खैर-उद्दीन साहिब फिर मक्का शरीफ में, जो हज़रत मोहम्मद साहब का जन्मस्थान है, चले आये। वहीं पर मौलाना अबुल कलाम का जन्म हुआ।

बचपन और शिक्षा

सन् १८६४ में मौलाना 'आज़ाद' के पिता मौलाना खैर-उद्दीन का विचार कुछ अपने सम्बन्धी और मित्रों की प्रेरणा से फिर हिन्दुस्तान लौट आने का हुआ। उस समय तो उनका लौट आना एक साधारण सी घटना थी, परन्तु अब जब हम मौलाना 'अज़ाद' के जीवन को इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो वह दिवस भारतीय इतिहास में एक सौभाग्यदिवस प्रतीत होता है। उस दिन भारत भूमि पर एक ऐसे महापुरुष का पदार्पण हुआ था जिन्होंने आगे चलकर महात्मा गांधी और जवाहिरलाल जैसे महापुरुषों के कंधे से कंधा लड़ा कर स्वतंत्रता-संग्राम के लिए कदम बढ़ाया।

मौलाना 'आज़ाद' का बचपन इस्लाम-धर्म के पवित्र तीर्थ मदीना में गुज़रा है, इसलिए इनकी बालशिक्षा अपनी धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने में ही हुई है। अरबी भाषा की शिक्षा इन्होंने अपनी माता से, जो उस भाषा की पंडिता थीं, ली है और फारसी और उर्दू की अपने पिता से। जहां भारतवर्ष के दूसरे नेताओं के विद्यार्थी-जीवन का बहुत सा भाग पश्चिम के देशों में और वहां की भाषाओं को सीखने में व्यतीत हुआ है वहां मौलाना साहिब का बचपन अपने देश में अपनी ही भाषा सीखने में गुज़रा है।

सिपाही-विद्रोह के बाद लोगों के विचार अंग्रेज़ों और उनकी भाषा अंग्रेज़ी के विरुद्ध हो चुके थे, अतः वे अपने बालकों को मौलवियों और पंडितों के पास मसज़िदों और मन्दिरों में शिक्षार्थ भेजते थे। मौलाना साहिब को भी इनके पिता ने शिक्षा के लिए एक बड़े योग्य मौलवी के सुपुर्द किया। इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी अतः इन्होंने पन्द्रह वर्ष की उम्र से पहले पहले ही अपनी सब धार्मिक पुस्तकों को समाप्त कर लिया और कुरानशरीफ़ में विशेष योग्यता पा ली। इस प्रकार जो शिक्षा हिन्दुस्तान में मिल सकती थी वह इन्होंने सत्रह साल की उम्र तक ही प्राप्त कर ली। परन्तु इनके पिता इन्हें अपने धर्म की उच्चतम शिक्षा देना चाहते थे, अतः इन्हें मिश्र की विख्यात यूनिवर्सिटी 'अल अज़हर' में भेज दिया। वहां पर कुछ साल रह कर इन्होंने अपने ज्ञान की और भी वृद्धि की।

सर सय्यद अहमद और इनके पिता के कुछ मित्र इन्हें अंग्रेज़ी भाषा की भी शिक्षा देने के पक्षपाती थे, परन्तु इनके पिता इसे न मानते थे। जब इनके पिता का देहान्त हो गया, तब इन्होंने अंग्रेज़ी सीखना शुरू किया।

मौलाना के पिता का देहान्त सन् १६०८ में हो गया। पिता की मृत्यु के बाद समस्त परिवार के पालन-पोषण का बोझ इनके कंधों पर ही आ पड़ा। उस समय इनके सम्बन्धियों और कुछ मित्रों की प्रबल इच्छा थी कि ये अपने पिता के पदचिह्नों पर चलकर इस्लाम धर्म की सेवा को ही अपने जीवन के भविष्य का उद्देश्य बनायें। परन्तु इनके विचारों पर कुछ और ही रंग चढ़ चुका था। इनके भाग्य में न केवल इस्लाम के धार्मिक आकाश पर ध्रुव नक्षत्र की तरह चमकना लिखा था अपितु मंझधार में पड़ी हिन्दुस्तान की राजनैतिक नाव के कर्णधार बन कर उसे पार लगाना भी लिखा था। यदि इनका कार्यक्षेत्र इस्लाम धर्म तक ही सीमित रहता तो ये अधिक से अधिक आठ-नौ करोड़ मुसलमानों की ही सेवा कर सकते, परन्तु अब इन्होंने हिन्दुस्तान की चालीस करोड़ जनता की जिसके अन्तर्गत हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख आदि सब संप्रदायों के लोग हैं सेवा का भार अपने कंधों पर उठाया हुआ है।

बचपन से ही मौलाना साहिब की प्रवृत्तिसमाचार-पत्रसंपादन की ओर रही है। मिश्र जाने से पूर्व ही ये 'लिसानुस सिदक' नाम की एक पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे। इनकी लेखनी में इतना आकर्षण था कि बड़े बड़े कवि और लेखक इनकी ओर खिंचे

चले आ रहे थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि मौलाना हाली इनके लेखों पर मुग्ध थे। सन् १६०६ में अंजमन-हिमायत-उल-इस्लाम के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर मौलाना 'आज़ाद' को भाषण के लिए मंच पर आते देख वे विस्मित हो गये कि 'लिसानुस सिदक' के विचारपूर्ण गम्भीर लेखों का लेखक एक पन्द्रह-सोलह साल का नवयुवक कैसे हो सकता है!

इनकी इसी छोटी उम्र की एक और घटना है। बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् मौलाना सिबली से इनका पत्र द्वारा परिचय था। एक दिन इन्हें बम्बई जाना पड़ा और मौलाना सिबली से मिलने गये। इनकी पत्रिका 'लिसानुस सिदक' तो उनके पास पहुँचती ही रहती थी। वे उसके लेखक की बड़ी प्रशंसा करने लगे क्योंकि वे इन्हें मौलाना 'आज़ाद' का लड़का समझते थे। परन्तु उनके विस्मय की सीमा न रही जब उन्हें यह पता लगा कि मौलाना 'आज़ाद' जिसे वे परिपक्व विचारों का एक अनुभवशाली वृद्ध विद्वान् अनुमान करते थे उनके सामने स्वयं पन्द्रह साल के युवक के रूप में खड़ा है।

राजनीति-क्षेत्र में

अब तक मौलाना साहिब का कार्यक्षेत्र साहित्यिक ही रहा था। वे कभी रम्य और पांडित्यपूर्ण कवितायें लिखते, कभी भावपूर्ण निबन्ध रचते और कभी कवि-सम्मेलनों में भाग लेते। पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन और धार्मिक वाइज़ करना तो मानो इनका व्यवसाय सा बन चुके थे। अभी तक इन्हें भारतीय

राजनीति-क्षेत्र में प्रवेश करने का कोई अवसर नहीं मिला था। परन्तु ईरान, श्याम, मिश्र और दूसरे स्वतन्त्र देशों के समाचार पढ़ पढ़ कर राजनीति में इनकी दिलचस्पी अवश्य बढ़ रही थी।

जब सरकार द्वारा बंगाल को दो भागों में विभक्त करने का प्रस्ताव बंगीय जनता के सामने आया तो मौलाना ने भी बंगाल निवासी होने के कारण इसका घोर विरोध किया। उन दिनों सर सय्यद अहमद मुसलमानों में अंग्रेज़ी-शिक्षा का बहुत ज़ोर से प्रचार कर रहे थे। इनका विचार था कि अंग्रेज़ी शिक्षा के बिना मनुष्यता नहीं आ सकती और मुसलमान तब तक उन्नति नहीं कर सकते जब तक वे अंग्रेज़ी विद्या का अध्ययन नहीं करते। उनके प्रचार से मुसलमान प्रभावित होने लग गये थे। जो लोग पहले अंग्रेजी-शिक्षा के विरुद्ध थे वे भी इसकी ओर खिंचे चले आ रहे थे। सन् १८८० में सर सय्यद ने अलीगढ़ कालिज की नींव रक्खी। इस के द्वारा भी उनके विचारों के प्रसार में काफ़ी सहायता मिली।

इस समय कांग्रेस ही भारतीयों की मुख्य राजनैतिक संस्था मानी जाती थी। उसका प्रभाव दिनोंदिन बढ़ रहा था। परन्तु उसमें हिन्दुओं की अत्यधिकता थी। मुसलमानों की अपनी कोई राजनैतिक संस्था नहीं थी। अतः सर सय्यद ने सन् १६०४ में इसके मुकाबले में मुस्लिम-लीग की संस्थापना की। इसका ध्येय मुसलमानों में राजनैतिक जागृति उत्पन्न करना और कांग्रेस का विरोध करना था। इसका परिणाम यह हो रहा था कि मुसलमान हिन्दुओं

से दूर हो जा रहे थे और उनमें वैमनस्य और ईर्ष्या के बीज बोये जा रहे थे।

मौलाना आज़ाद को सर सय्यद अहमद की यह नीति पसंद न आई। इनके विचारशील दिमाग़ में खटका कि इस नीति का परिणाम भारत के लिए भयंकर होगा। सदियों से भाई भाई की तरह हिल मिल कर रहने वाली ये दो जातियां एक दूसरे के ख़ून की प्यसी बन जायंगी। इस विचार ने इन्हें राजनैतिक कार्य-क्षेत्र में प्रविष्ट होने को बाधित किया। उस समय इनकी उम्र चौबीस साल की थी। पहले पहल उन्हों सन् १९१२ में 'अल हलाल' नामक समाचार-पत्र निकाला और अपना उपनाम 'आज़ाद' रखकर उसका सम्पादन करने लगे। इसके द्वारा ये अपने मन्तव्यों का प्रचार करने लगे। तब से लेकर अब तक लगभग चोवालीस वर्षों के लम्बे समय से यह पत्र इसी दृढ़ता और दूरदर्शिता से चल रहा है और जातीय-एकता के प्रचार का माध्यम बना हुआ है। इसके विरुद्ध कई लहरें उठीं, कई आंदोलन हुए, परन्तु इसकी नीति में थोड़ा भी अन्तर नहीं पड़ा। इसके द्वारा मौलाना साहिब अपने जातीय भाइयों तक देशभक्ति का संदेश पहुँचा रहे हैं। अपनी तर्कशक्ति और कुरानशरीफ़ के प्रमाणों से यह सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं कि मुसलमानों के लिये दो ही मार्ग हैं— स्वतंत्रता का प्राप्त करना अथवा मृत्यु। इनके ऐसे प्रचार का परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों का एक बड़ा विचारशील भाग इनकी ओर खिंचा आने लगा।

सन् १९१४ में प्रथम विश्वव्यापी युद्ध का सूत्रपात हुआ। इस युद्ध में तुर्क लोग जर्मनी के साथ मिलकर मित्र देशों से युद्ध कर रहे थे। इधर हिन्दुस्तानी लोग और सेनायें तन मन धन से अपनी सरकार की सहायता कर रही थीं। तुर्कों और अंग्रेज़ों में युद्ध होने से भारतीय मुसलमानों में व्यग्रता का होना स्वाभाविक था। मौलाना आज़ाद अपने पत्र में तुर्कों का पक्ष लेते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि पत्र की पहली ज़मानत ज़ब्त कर ली गई और इससे दस हज़ार की नई ज़मानत मांगी गई। मौलाना ने ज़मानत न दी और 'अल हलाल' को बंद कर दिया, परन्तु इन्होंने अपने मन्तव्य का प्रचार करना न छोड़ा। युद्ध के वातावरण में जब अंग्रेज़ जीवन और मृत्युके मध्य में खड़े थे, तब मौलाना-जैसे उग्र विचारों के व्यक्ति का स्वतंत्र रहना असम्भव था। इनका यू० पी०, दिल्ली, सी० पी० और मद्रास में प्रवेश नियन्त्रित किया गया। कुछ दिन बाद इन्हें अपने प्रांत बंगाल से भी बहिष्कृत किया गया। बंगाल छोड़ कर ये रांची चले गये और वहां पर इन्हें नज़रबन्द किया गया। इस अवस्था में ये न किसी से मिल जुल सकते थे और न पत्र-पत्रिकाओं में कुछ लिख सकते थे। इस अवकाश के समय में इन्होंने 'तरजमात-उल-कुरान' की रचना की जिसे, जब वह प्रकाशित हुई तो लोगों ने अत्यंत पसंद किया। चार वर्ष तक ये इसी बंदी अवस्था में रहे। अन्त में सन् १९१९ में इन्हें मुक्त किया गया।

महायुद्ध की समाप्ति पर ख़िलाफ़त-आंदोलन शुरू हुआ।

महात्मा गांधी के संकेत पर हिन्दुओं ने इसमें बढ़ चढ़ कर भाग लिया। उन्होंने एक करोड़ से अधिक रुपये जमा किये। मौलाना इसके प्राण थे। इनके प्रयास से मुसलमानों में विशेष जागृति उत्पन्न हो गई। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के अधिकाधिक समीप आने लगे। सन् १९२० में कांग्रेस और ख़िलाफ़त कान्फ्रेंस के अधिवेशन साथ साथ हुए। ख़िलाफ़त-कान्फ्रेंस के अध्यक्ष मौलाना 'आज़ाद' थे। इन दोनों अधिवेशनों में सत्याग्रह के प्रस्ताव पास हो गये। उधर यह हुआ, इधर सरकार ने भी उग्र दमन आरम्भ कर दिया। दोनों दलों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नेता पकड़े गये।

१० दिसम्बर, सन् १९२१ के दिन मौलाना आज़ाद कुछ और नेताओं के साथ पकड़े गये और इन्हें छः मास का कारावास दिया गया। इसके बाद ही गांधी जी भी जेल में पहुँच गये। पीछे राज-नैतिक मैदान में कोई उग्रपक्षीय नेता न रहा। जो नेता बाहिर थे भी उन्होंने कांग्रेस की नीति को बदलना चाहा। वे कौंसिलों में प्रवेश के पक्ष में हो गये। इससे दोनों दलों में संघर्ष शुरु हो गया। जब कांग्रेस का अधिवेशन गया में हुआ तो गांधीपक्ष के नेताओं की विजय तो बहुमत से हो गई परन्तु दोनों पक्षों में फूट का बीज बोया गया। परिणाम यह हुआ कि बंगाल के प्रसिद्ध नेता सी० आर० दास, पं० मोती लाल नेहरू और लाला लाजपत राय आदि नेताओं ने 'स्वराज्य पार्टी' का सूत्रपात किया।

मौलाना 'आज़ाद' जब जेल से मुक्त हो कर आये तो इन्हें

देश की यह अवस्था देख कर अत्यन्त खेद हुआ इनकी अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन का आयोजन किया गया। इस समय इनकी उम्र केवल चौंतीस बरस की थी। इनके प्रयास से दोनों पक्षों में समझौता हो गया और कौंसिलों के बहिष्कार के प्रस्ताव को स्थगित कर कौंसिलों में प्रवेश के इच्छुकों को चुनाव लड़ने की अनुज्ञा दी गई।

इस समय खिलाफत-आंदोलन समाप्त हो चुका था। हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो लहर ज़ोर से चल रही थी, वह भी थम गई थी। फिर दोनों जातियों में विरोध के भाव जागृत हो रहे थे। कई शहरों में फिर से साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये थे। इससे गांधी जी को, जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-एकता के अविस्मरणीय सुवर्ण-दृश्य देखे थे और जो उन्हीं के आधार पर भारत-स्वतंत्रता-मन्दिर को खड़ा करने का स्वप्न देख रहे थे, बड़ा आघात लगा। उन्होंने इक्कीस दिन का अनाहार व्रत धारण कर लिया। फल यह हुआ कि समूचे देश की वृत्ति उनकी ओर जा लगी। उनके जीवन की रक्षा का प्रश्न देश के सामने उपस्थित हो गया। पर लोग किंकर्तव्यविमूढ़ थे। इसी अन्तर में दिल्ली में एक एकता-सम्मेलन हुआ जिसके प्रधान मौलाना थे। इसमें इन्होंने कुरान शरीफ की आयतों के प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि हिन्दू-और मुसलमान एक ही ईश्वर की सन्तान होने के नाते से भाई भाई हैं। इनके विचारों का बहुत प्रभाव हुआ और कांग्रेस की समाप्ति

पर हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों ने एक दूसरे का प्रेमालिंगन किया।

सन् १६२८ तक राजनैतिक आंदोलन की लहर कुछ कम वेग से चल रही थी। इसी वर्ष सरकार की ओर से साइमन कमीशन भारतीय राजनैतिक स्थिति की जांच करने और शासन-विधान में नये सुधार करने के लिए नियुक्त हुई। इसमें किसी भारतीय को सम्मिलित नहीं किया था। इसलिये देश में इस मांग को पूरा करने के लिए आंदोलन शुरू हुआ। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस पर कुछ ध्यान न दिया। फलतः जनता का रोष और बढ़ा। कांग्रेस ने कमीशन के बहिष्कार की घोषणा कर दी। कमीशन आई तो अवश्य, परन्तु उसके साथ किसी ने सहयोग न किया।

सन् १६१६ के लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन में भारतीयों का ध्येय- 'स्वतंत्र स्वराज्य' घोषित किया गया। इसके पश्चात् गांधी जी ने सत्याग्रह-आंदोलन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और देशभर में नव जीवन सा फूंक दिया। इस पर सरकार को दमन—नीति का आश्रय लेने को बाधित होना पड़ा। कांग्रेस के सब नेता बन्दी किये गये। मौलाना 'आज़ाद' भी कलकत्ते में पकड़ लिये गये। उस समय ये कांग्रेस के स्थानापन्न प्रधान थे। इन पर मेरठ में अभियोग चलाया गया। कांग्रेस की नीति के अनुसार इन्होंने स्वपक्ष में एक शब्द भी

नहीं कहा, अदालत से पूरा असहयोग किया। इन्हें छै मास की कैद का दण्ड दिया गया।

कुछ समय बाद 'गांधी-इरविन-समझौता' के अनुसार सब देशभक्त नेताओं को उन्मुक्त किया गया। मौलाना साहब भी उनमें थे। गांधी जी को दूसरी गोलमेज़-कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए विलायत जाना पड़ा। परन्तु वहां से वे निराश लौट आये।

इसी अन्तर में इरविन साहिब के स्थान पर लार्ड विलिंगडन वायसराय नियत होकर आये। उन्होंने आते ही दमनचक्र को ज़ोर-शोर से चलाना शुरू कर दिया। गांधी जी और उनके साथी नेता फिर जेल की कोठड़ियों में बन्द किये गये। मौलाना भी इन्ही में थे। ये कैसे बाहिर रह सकते थे!

गोलमेज़-कान्फ्रेंस के निर्णय के अनुसार तात्कालिक भारतसचिव रामज़े मेकडानल्ड ने अपनी ओर से जो सुधार-योजना दी उससे देशभर में निराशा की लहर चल गई। कांग्रेस उसमें भाग लेने को तैयार न थी, तो भी विपक्षियों के इस दावे को कि कांग्रेस मर चुकी है निर्मूल सिद्ध करने के लिए उसने चुनाव को लड़ना स्वीकृत किया। इसमें उसे आशातीत सफलता मिली। इन चुनावों की सफलतायों की विजयमाला पं० जवाहर लाल और मौलाना के ही गले में पड़ी क्यों कि इन्होंने नगर-नगर और गांव-गांव घूम कर जनता में जागृति उत्पन्न की थी। इसीसे मौलाना 'पार्लिमेंटरी बोर्ड' के सदस्य बनाये गये।

सन् १९३९ में दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। अंग्रेज़ों ने

भारत की ओर से भी युद्धघोषणा भारतीय नेताओं का मत लिये बिना ही कर दी थी। इस पर कांग्रेसी नेता रुष्ट हो गये और उन्होंने प्रान्तीय मन्त्रीपदों को छोड़ दिया।

सन् १६४० में रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन मौलाना की अध्यक्षता में हुआ। इसमें मौलाना 'आज़ाद' ने जो भाषण दिया उसमें इन्होंने जर्मनी और इटली के विरुद्ध और आक्रान्त देशों के पक्ष में बहुत कुछ कहा परन्तु साथ ही भारत स्वतंत्रता की मांग को भी उपस्थित किया।

सन् १६४१ में जापान भी युद्धक्षेत्र में आ धमका। उस समय, भारत रक्षा की समस्या सब के सामने सचेतन रूप में उपस्थित हो गई। अंग्रेज़ी पार्लियमेंट ने सर क्रिप्स को भारतीय नेताओं से समझौता करने को भेजा। राजनैतिक वातावरण को शान्तिमय बनाने के लिए सब नेताओं को छोड़ दिया गया। सर क्रिप्स कांग्रेस के प्रतिनिधि पंडित जवाहरलाल और मौलाना 'आज़ाद' के साथ बहुत दिनों तक बात चीत करते रहे, परन्तु फल कुछ न हुआ। अन्त में वे निराश होकर लौट गए।

सन् १६४२ में कांग्रेस-अधिवेशन बम्बई में हुआ। मौलाना 'आज़ाद' उसके प्रधान थे। अधिवेशन के समाप्त होते ही प्रधान और कार्यकारिणी के सब सदस्य पकड़ लिये गये। परिणामस्वरूप देश में कई घटनायें हुईं जिनसे असंख्य जानें गईं और करोड़ों रुपयों की हानि हुई।

दो अढ़ाई साल बाद जब युद्ध की समाप्ति हुई तो सब नेता छोड़

दिये गये। इसी समय कुछ पार्लियमेंट के सदस्यों ने यहां की स्थिति का अध्ययन करने के लिये भारत-यात्रा की। उन्होंने मौलाना के साथ कई बार विचार-विनियम किया। इनकी विद्वत्ता और स्पष्टवादिता से वे बहुत प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् इंगलैंड से लौट कर लार्ड वेवल ने भी इन से कांग्रेस-प्रतिनिधि के रूप में कई बार विचार-परिवर्तन किया। पुनः जब इंगलैंड के सचिवमंडल के प्रतिनिधि यहां आये तो उन्होंने भी इन्हीं से विमर्श किया, क्योंकि कांग्रेस के प्रधान होने से ये ही उसके प्रतिनिधि थे। इन सब अवसरों पर जिस निर्भयता, स्पष्ट-वादिता, तर्काभिज्ञता और पांडित्य का इन्होंने परिचय दिया है, उससे इनका मान और गौरव पहले से भी शतशः बढ़ गया है।

छै साल तक 'आज़ाद' साहिब कांग्रेस के निरन्तर सभापति रहे। इनके बाद पंडित नेहरू प्रधान निर्वाचित हुए। बंबई में कांग्रेस-कमेटी का एक अधिवेशन हुआ जिसमें इन्होंने कांग्रेस की बागडोर, जिसे छै साल से ये थामे थे, पंडित जी को सौंप दी। जिस समय कांग्रेस ने व्यवस्थापिका सभा में प्रविष्ट होना स्वीकार किया तो मौलाना को शिक्षा विभाग का मन्त्रिपद दिया गया। आज कल स्वतंत्र भारत में भी ये उसी पर काम कर रहे हैं।

मौलाना इस समय हमारे मध्य में हैं और ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इन्हें बहुत लंबी आयु देकर भारत की इससे भी अधिक सेवा का अवसर प्रदान करे।

मौलाना आज़ाद उन उच्च व्यक्तियों में से हैं जिनसे किसी भी देश को गर्व होना चाहिये। यदि ये किसी स्वतंत्र देश के निवासी होते तो उसके कर्ता-धर्ताओं में सब से उच्चतम पद पर

होते। इस समय भी अधिक से अधिक मान जो भारत किसी भी व्यक्ति को दे सकता है इन्हें कई बार प्राप्त हो चुका है। कांग्रेस के ये कई बार प्रधान रह चुके हैं। देश ने इनकी सेवाओं के गौरव को स्वीकार किया है। इनके मुख से अथवा लेखनी से निकला हुआ एक एक शब्द पूरे ध्यान से सुना और पढ़ा जाता है। जहां कहीं भी इन्हें भाषण करने का अवसर मिलता है, वहीं लोग हज़ारों की संख्या में उपस्थित हो जाते हैं।

मौलाना की धार्मिक शिक्षा बहुत उच्च कोटि की हुई थी। इनके पल्ले का शिक्षित मौलाना शायद ही भारत में कोई दूसरा होगा। इसीसे सालों से इन्हें 'जमीयत-उल्-उलमा' की प्रधानता प्राप्त है। जिस संप्रदाय से इनका संबन्ध है उसमें शिक्षित उल्माओं का, विशेषतः मौलाना 'आज़ाद' से शिक्षित उल्माओं का बहुत प्रभाव है। इसलिए मौलाना यदि चाहते तो मुसलमान-जनता के शिरोमणि बन सकते थे। करोड़ों सजातीयों को उंगली के इशारेमात्र से चला सकते थे। इनका जीवन बहुत आराम से कट सकता था। परन्तु धन-वैभव के जीवन को लात मार कर इन्होंने उस मार्ग का अवलंबन किया है जिस पर कांटे ही कांटे हैं, धन-सम्पत्ति के स्थान पर निर्धनता और सुसज्जित महलों के स्थान पर कारा की बंद कोठड़ियां हैं। परन्तु आनन्दानुभव मन की सम्पत्ति है, वह इन्हें प्राप्त है। ये इसी अवस्था में सन्तुष्ट हैं। ख़ानसाहिबों और ख़ानबहादुरों के सहवास के स्थान में ये 'नंगा फकीर' और सर्वस्वत्यागी देशभक्तों के सहवास को कहीं उत्तम समझते हैं।

मौलाना साहिब की आत्मा कितनी दृढ़ और उच्च है। एक ओर

यहां ये संसार की एक प्रतापशाली सरकार से टक्कर ले रहे हैं वहां दूसरी ओर इन्हें स्वजातीयों के विरोध की यातनाओं को भी सहन करना पड़ता है। इन्हें धर्मद्वेषी और काफिर तक कह कर अपमानित किया जाता है, कई बार वध करने की धमकियां दी जाती हैं, सांप्रदायिक पत्रों में इनके विरुद्ध ज़हरभरे लेख लिखे जाते हैं, परन्तु इन सब बातों का इनपर कुछ भी असर नहीं होता। ये समझते हैं कि जिस मार्ग पर ये चल रहे हैं वही इनकी आत्माकी आवाज़ के अनुकूल और ईश्वरनिर्दिष्ट मार्ग है। इनके सजातीय मुसलमानों का भी इसीमें कल्याण है।

जब मौलाना जेल ही में थे तो इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया था। उस अन्त काल में भी इन्हें उसके मुखदर्शन का अवसर नहीं मिला। परन्तु इस घटना को ईश्वरेच्छा पर छोड़ कर इन्होंने इस विपत्ति को धैर्य से सहन किया। लोगों ने इनकी स्त्री का स्मारक खड़ा करने का आग्रह किया और धन एकत्र करने की घोषणा भी कर दी, परन्तु इन्होंने जनता की इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया और जो धन एकत्र किया जा चुका था, उसे किसी अन्य सार्वजनिक कार्य में व्यय करने की प्रेरणा की। इस प्रकार इन्होंने अपनी धर्मपत्नी का कोई स्मारक नहीं बनने दिया।

मौलाना साहिब के जीवन से नवयुवक ऐसी ऐसी उत्तम शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं जिनसे उनका भविष्य उज्ज्वल हो सकता है, आत्मा उन्नत हो सकती है और देशसेवा का पवित्र कार्य करते हुए वे अमर कीर्ति को पा सकते हैं।

मौलाना साहिब के कुछ विचार

१—हिन्दू और मुसलमान ईश्वर की दो एक सी आँखें हैं । यदि एक को कष्ट मिला तो दूसरी को स्वभावतः मिलेगा ही ।

२—जहां मेरे मुस्लिम भाइयों को अपने इस्लाम धर्म का अभिमान होना चाहिए, वहां इन्हें भारतीय होने का भी उतना ही अभिमान होना चाहिए । जिस देश में निवास करना उसकी सेवा से विमुख होना परले दरजे की कृतघ्नता है ।

३—दमन मनुष्य के शरीर को ही दबा सकता है, उच्च आत्माओं पर उसका प्रभाव नहीं पड़ सकता ।

४—यदि भारत के नौ करोड़ मुसलमान भाइयों ने स्वतन्त्रता के संघर्ष में भाग न लिया तो इस का बुरा प्रभाव केवल उन्हीं पर ही नहीं अपितु संसारभर के चालीस करोड़ मुसलमानों पर पड़ेगा ।

५—पथभ्रष्ट लोगों को सीधा मार्ग दिखलाना या उस पर चलना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है । जो लोग इस कर्तव्य से विमुख होते हैं, ईश्वर के दरबार में वे अपराधी ठहराये जायेंगे ?

६—मैं गर्व के साथ अनुभव करता हूं कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ, और हिन्दोस्तान की जातीयता के सुन्दर भवन का एक अंग हूं ।

७—यदि हिन्दू-धर्म कई हज़ार सालों से भारत निवासियों का मन्तव्य रहा है तो इस्लाम-धर्म भी एक हज़ार साल से यहां के निवासियों का मन्तव्य रहा है । जिस प्रकार कोई हिन्दू कह सकता है कि मैं हिन्दुस्तानी हूं और हिन्दू-मत का अनुयायी भी इसी प्रकार एक मुसलमान भी गर्व से कह सकता है कि मैं हिन्दुस्तानी भी हूं और इस्लाम-मत का अनुयायी भी हूं ।

८—जो चीज़ बुरी है उसका या तो सुधार करना चाहिए या उसे मिटा देना चाहिये । कोई तीसरा विकल्प नहीं है ।

९—इस्लाम के पैगंम्बर का सन्देश है—नेकी का ऐलान करो और बुराई को रोको । यदि ऐलान न करो तो तुम्हारे पर नये लोग शासन करने लग जायेंगे ।

१०—तुममें से यदि कोई कहीं पर किसी बुराई को देखे तो उसे हाथ से रोके, यदि हाथ से रोकने की शक्ति न

हो तो मुंह से बोलकर रोके, यदि इतनी भी शक्ति उनमें न हो तो उसे मन में बुरा समझे ।

११–मेरे देशवासियो, लाखों के परिश्रम से तुम अपने आदर्श के सामने पहुँच गये हो । अब थकावट ज़ाहिर करने का अवसर नहीं । दृढ़ता के साथ दो चार पग और बढ़ो और वहां पहुँच जाओ ।

१२–इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी देश को उठाने में उसके नेताओं का बहुत बड़ा हाथ होता है परन्तु जिस देश की सर्वसाधारण जनता कुम्भकर्णी नींद में सोई हो और उठना ही न चाहे तो उस देश के नेता क्या करेंगे ।

१३–सांप्रदायिक झगड़े हमें निर्दिष्ट मार्ग से दूर ले जा रहे हैं । इन झगड़ों की नींव सिवा स्वार्थी लोगों की स्वर्थसिद्धि-कामना के और कोई नहीं ।

१४–सफलता प्राप्त करते देर नहीं लगती यदि हमारा ध्येय शुद्ध हो और मन में दृढ़ता हो ।

१५-चलते चलो, चलते चलो, सदा आगे देखो, पीछे मत देखो । एक न एक दिन उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाओगे ।

पं० जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल जी का नाम जिह्वा पर आते ही उस चांद का ध्यान आ जाता है जो अपनी शीतल सुषमा से जगत् को शान्ति और नयनानन्द प्रदान करता है, उस महाप्रतापी आदित्य का ख्याल आ जाता है जो संसार को चकाचौंध करने वाले प्रकाश से उसके कोने कोने से अन्धकार को भगा कर उसे दीपित करता है, उस भूकंप का विचार आता है जो बड़े से बड़े पर्वतों को भी धराशायी कर संसार को हिला देता है। जवाहरलाल के व्यक्तित्व में चांद की शीतल सुषमा, सूर्य का प्रताप और भूकम्प की शक्ति है। इनका जीवन प्रत्येक पहलू में पूर्ण है, किसी भी नेता में जो भी विशेष गुण होने चाहिएं वे सब के सब इनके जीवन में सन्निविष्ट हैं।

एक अमरीकन लेखक के शब्दों में—"वर्तमान समय में जवाहरलाल संसारभर के राष्ट्र–नेताओं में सब से अधिक

प्रजातन्त्र-वादी नेता हैं । चर्चिल, रूज़वेल्ट और चीन के चिआंग काई शेक का तो कथन ही था, गांधी जी स्वयं भी इस अंश में उसके सामने नहीं ठहर सकते...।" वर्तमान भारत के सभी नेताओं में जवाहरलाल का स्थान सर्वोच्च माना गया है। इनमें निर्भयता, स्वमन्तव्यदृढ़ता, प्रणबद्धता और लोकप्रियता आदि ऐसे गुण हैं जिनके कारण कोई भी नेता जनता के हृदय में उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है, जो कि इन्हें निस्संशय प्राप्त है। यही कारण है कि इनका नाम और यश स्वदेश की परिधि से निकल कर संसार के कोने कोने में व्याप्त हो चुका है।

जवाहरलाल का जीवन कष्टों का जीवन है, कांटों की शय्या का जीवन है। परन्तु ज्यों ज्यों इन्हें अधिकाधिक कष्ट मिलते रहे त्यों त्यों इनका हृदय विपत्तियों को सहन करने के लिए इस्पात से भी अधिकाधिक दृढ़ होता गया है। इनके जीवन का अधिकांश जेलों का कष्ट सहन करते गुज़रा है, परन्तु एक बार भी इनका पग उद्दिष्ट मार्ग से आगे पीछे नहीं हुआ, एक बार भी इनके मुख से निराशा और हतोत्साहता का एक शब्दमात्र भी नहीं निकला। यह है इनकी यशस्विता का कारण, यह है इनकी सर्वप्रियता का हेतु।

संसारभर के इतिहास के पृष्ठों को उलट-पुलट कर देख जाइये, सर्वत्र आपको यही मिलेगा कि अमुक महापुरुष ने विषम परिस्थिति में रह कर धनार्जन किया और अन्त में वह

धनुकुवेर बन गया, झोपड़ियों में रहने वाले अपने बुद्धि-बल और बाहुबल से प्रासादवासी बन गये। अमरीका के रूज़वेल्ट, फोर्ड, बुकर टी० वाशिंगटन, भारत के ताता, बिरला, सर गंगाराम—इसके निदर्शन हैं। परन्तु क्या कहीं आपको यह भी देखने को मिला है कि लक्ष्मीदेवी की गोद में खेलने वाले, बड़े बड़े प्रासादों में रहने वाले, षड्रस भोजन करने वाले और मनुष्यप्राप्त सब सुखों के उपभोग करने की सामर्थ्य रखने वाले किसी ने इन सुखों को लात मार कर अपनी इच्छा से त्याग और निर्धनता का जीवन स्वीकार किया हो? वर्तमान समय में जवाहर लाल ही ऐसे हैं जिन्होंने यह निदर्शन संसार के सामने रखा है।

इनके पिता स्वर्गीय मोतीलाल जी लाखों की आय के स्वामी थे और जवाहर जी उनके एकमात्र पुत्र थे। अतः कौन सा ऐसा सुख था जो इन्हें प्राप्य या प्राप्त न था! फिर भी ये 'आनंद-भवन' से प्रासाद को छोड़ कर किसानों की झोंपड़ियों में वास करते रहे हैं, परिवारसुख को त्याग कर जेल-यातनाओं को भोगते रहे हैं, घर के षड्रस भोजन को छोड़ कर मज़दूर और किसानों के मक्के और बाजरे के सूखे टुकड़े सानन्द से खाते रहे हैं। इन्होंने अपना समय, धन, विद्या, अनुभव और समूचा शरीर ही देश को अर्पण कर दिया है। जब कभी दिन को दोपहर को या आधी रात को भी देश के आमन्त्रण की आवाज़ इनके कानों में पड़ती है, तो ये शेरसिपाही तत्काल तैयार होकर वहां पहुँच जाते हैं। ये हैं हमारी रत्नप्रसू मातृभूमि की उपज मोती के

जवाहर । इनका हमें—बालक-युवा-वृद्धों को, स्त्री-पुरुषों को, हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-सिक्खों तथा देश के सब अधिवासियों को गर्व है ।

पूर्वज

पं० जवाहरलाल नेहरू जी के पूर्वज काश्मीर निवासी थे । इनके पड़दादा स्वर्गीय पंडित राजकौल जी अठारहवी शताब्दी के आरम्भ में काश्मीर की रियासत को छोड़ कर हिन्दुस्तान में आ बसे थे। घटना यों हुई कि जब फरुखसियर ने हिन्दुस्तान का राज्य हस्तगत किया तो उसे राजकाज चलाने के लिए एक प्रवीण गणितज्ञ की आवश्यकता हुई । उसने पंडित राजकौल को इस कला में निपुण मान कर उन्हें अपने पास बुला लिया और एक उच्च पद और जागीर दे कर सत्कृत किया । तब से ये दिल्ली में रहने लगे। इनकी जागीर सआदित अली खां की नहर के किनारे किनारे थी, अतः तब से इस परिवार का उपनाम 'नेहरू' पड़ गया। कुछ समय बाद किसी कारण से इन्हें वह जागीर छोड़नी पड़ी । इससे इनके परिवार को आजीविका के भी कष्ट का अनुभव होने लगा । इसके बाद समय कुछ फिर फिरा और पण्डित राजकौल जी के पुत्र पं० लक्ष्मी-नारायण नेहरू जी को 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' की अच्छी नौकरी मिल गई और ये सरकारी वकील बनाये गये। पं० लक्ष्मी नारायण के पुत्र पंडित गंगाधर नेहरू थे, जो सन् १८५७ के ग़दर के समय दिल्ली में कोतवाल के पद पर थे। सन् १८६१ में पं० गंगाधर की मृत्यु के

समय पं० मोतीलाल जी, जवाहरलाल के पिता माता के गर्भ में थे। इनके दो भाई और थे—पं० बंसीधर और पं० नन्दलाल। उन दिनों अंग्रेज़ी की शिक्षा का अधिक प्रचार न था, परन्तु इन दोनों को उसका कुछ कुछ अभ्यास था।

ग़दर के दिनों में नेहरू परिवार को दिल्ली छोड़नी पड़ी। पं० गंगाधर जी की आगरे में १८६१ में मृत्यु हो गई और उसके कोई तीन सप्ताह बाद ६ मई, १८६१ को मोतीलाल जी का जन्म हुआ। पं० बंसीधर को कुछ अंग्रेज़ी-ज्ञान के कारण अंग्रेज़ी सरकार की अदालत में एक अच्छा स्थान मिल गया था और उसी संबन्ध में स्थान-स्थान पर तबदीली होने के कारण उनका संबन्ध इस परिवार से कम से कम होता गया। इस कारण परिवार के पालन पोषण का भार पं० नन्दलाल जी को ही उठाना पड़ा। दस साल तक ये रेवड़ी रियासत के दीवान पद पर रहे, पीछे ये वकील बन कर अलाहाबाद आ गये। तब से यह परिवार यहीं पर निवास कर रहा है। पं० मोतीलाल जी के पालन-पोषण और शिक्षण का सारा बोझ पं० नन्दलाल जी को ही उठाना पड़ा और जिस ख़ूबी और योग्यता से उन्होंने इस कर्तव्य का पालन किया उसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उन्हें उच्च शिक्षा देने में उन्होंने कुछ भी आगा पीछा नहीं देखा।

पं० नन्दलाल जी का परिश्रम व्यर्थ नहीं गया क्योंकि मोतीलाल [illegible] बहुत होशियार और तीव्रबुद्धि के

थे। ये सब परीक्षाओं में सफल ही न होते रहे, अपितु निरन्तर उच्च स्थान, पदक और पारितोषिक पाते रहे। वकालत की परीक्षा में इन्होंने सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। वकालत का काम शुरू करने के कुछ ही साल बाद ये उच्च कोटि के इने-गिने वकीलों में गिने जाने लगे ।

कुछ समय बाद पं० नन्दलाल जी की मृत्यु हो गई । इससे मोतीलाल जी को बहुत आघात हुआ। उनकी मृत्यु के बाद परिवार के पालन-पोषण का भार मोतीलाल जी के कंधों पर ही आ पड़ा। तब से ये वकालत के काम में अधिक ध्यान देने लगे। थोड़े ही समय में प्रमुख वकीलों में इनकी गणना होने लगी। इनकी आय भी बहुत बढ़ गई । आय बढ़ने के साथ खर्च और आमोद-प्रमोद की मात्रा का बढ़ना भी स्वाभाविक था । फलतः नित्य नये-नये सामान संसार के कोने कोने से आकर इनके पास जुटने लगे। यहां तक कि कहा जाता है कि इनके कपड़े भी पैरिस से धुल कर आते थे। ये यू० पी० के गवर्नर से भी अधिक ठाट-बाट से जीवन व्यतीत करते थे ।

बचपन और शिक्षा

१४ नवंबर, १८८९ को इलाहाबाद में जवाहरलाल का जन्म हुआ। भारतीय इतिहास में वह दिन अतिशुभ दिन है। उस दिन ईश्वर की प्रेरणा से गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' इस बचन के अनुसार इस महान् आत्मा का हमारे पास आगमन हुआ।

जैसा ऊपर बताया गया है, उस समय इनके पिता श्री मोतीलाल जी की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी। संसार के किसी भाग की कोई भी आमोद-प्रमोद की वस्तु न थी जो इनके पास विद्यमान न थी। ऐसी परिस्थिति में जिस बालक का लालन-पालन हो रहा हो, उस पर इस वातावरण का प्रभाव होना आवश्यक है। परन्तु इनके पिता इन्हें बचपन से ही सदाचार और सब आदर्शों की शिक्षा देना चाहते थे। अभी ये चार-पांच वर्ष के ही थे कि इनकी शिक्षा के लिए अंग्रेज़ अध्यापिकायें नियत थीं। साथ ही अपनी भाषा की शिक्षा के लिए एक पंडित भी नियत थे, परन्तु हिन्दी और संस्कृत की ओर इनकी रुचि नहीं थी।

जवाहरलाल श्री मोतीलाल जी के इकलौते पुत्र थे, इसलिए इनके लिए पिता का प्रेम अगाध होना स्वाभाविक था। तो भी उनका स्नेह उन अमीरों की कोटि का न था जो अपनी सन्तान को धन सम्पत्ति के मद में बिगड़ने देते हैं। एक दिन की घटना है श्री मोतीलाल जी की टेबल पर दो कलमें पड़ी थीं—एक फौंटेनपेन और दूसरी साधारण। जवाहरलाल ने कौतुकवश उनमें से एक उठा ली। जब इनके पिता को इस बात का पता लगा तो उन्होंने पुत्र को बहुत कड़ा दंड दिया। इसका फल यह हुआ कि उस दिन से इन्होंने फिर कभी कोई वस्तु नहीं चुराई।

मोतीलाल जी के मुंशी का नाम मुबारिक था। वह जवाहर

से बहुत स्नेह करता था। माता के सहवास के सिवा जवाहरलाल के बचपन का बहुत सा समय इसी की गोद में व्यतीत हुआ है। इसी के साथ ये दशहरे की झांकियों और मुहरम के जलूसों को देखा करते थे। ईद के दिन वह इन्हें अपने घर ले जाकर मिठाई और सेवियां खिलाया करता था। जब उसे अवकाश मिलता तो इन्हें गोद में लेकर अलफलेला की कहानियां और ग़दर की बातें सुनाया करता था, जिनके सुनने से इन्हें अहर आनन्द मिलता था। इसी से स्पष्ट है कि नेहरू परिवार में शुरू से ही साम्प्रदायिक कट्टरता का अभाव रहा है।

श्री मोतीलाल जी के नये भवन, आनन्द-भवन का निर्माण सन् १८६६ में हुआ था। यह वही आनन्दभवन है जो आजकल 'स्वराज्य-भवन' बन चुका है। भवन क्या था—राजा-महाराजाओं का प्रासाद था। उस समय अलाहाबाद में इसके जोड़ का एक भी भवन न था। संसार के कोने कोने से भव्य सामग्री लाकर इसे भूषित किया गया था। बिजली की रोशनी और एक विशाल और सुन्दर तालाब इसकी विशेषतायें थीं। तालाब में स्नान करने, तैरने और छलांगें लगाने में जवाहरलाल को विशेष आनन्द मिलता था।

इङ्गलैंड को

जवाहरलाल की उम्र पन्द्रह वर्ष की हो गई। जितनी प्रारम्भिक शिक्षा इन्हें यहां मिल सकती थी मिल चुकी थी। आगे की उन्नत

शिक्षा के लिए इनके माता पिता ने इन्हें इंगलैंड भेजना उत्तम समझा, क्योंकि योरप ही उस समय उच्च शिक्षा का केन्द्र माना जाता था। इन्हें इंगलैंड पहुँचाने के लिए इनके पिता के साथ परिवार के और लोग भी गये। वहां पर इन्हें 'हैरो' स्कूल में भरती करा कर पण्डित मोतीलाल और उनके परिवार के लोग योरप-यात्रा को चल दिये।

स्कूल में इन्हें पहले तो कुछ कठिनताओं का सामना करना पड़ा, क्योंकि वहां के कई पाठ्य विषयों का इन्हें पहले ज्ञान न था। परन्तु बहुत अल्प समय में ही इन्होंने इस न्यूनता को पूर्ण कर लिया और सहपाठी छात्रों में चोटी के स्थान पर पहुँच गये। उस समय इनके सहपाठी कुछ और भारतीय भी थे। उनमें बड़ौदा और कपूरथला के राजकुमार इनके साथ एक ही छात्रावास में रहते थे।

उन दिनों भारत में राजनीतिक हलचल ज़ोर पर थी। सन् १९०६ और १९०७ में पंजाब, बंगाल और महाराष्ट्र में विशेष राजनैतिक आन्दोलन शुरू था। ला० लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को देश निर्वासन हो चुका था। सर्वत्र विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार हो रहा था। यहां के शासक किंकर्तव्यविमूढ़ थे। ये सब समाचार विलायती समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित होते थे, परन्तु बहुत कम अंश में। फिर भी इन्हें पढ़कर जवाहरलाल के चित्त पर विशेष प्रभाव होता था।

साल डेढ़ साल के अन्तर में जवाहरलाल ने हैरो स्कूल की शिक्षा को समाप्त कर लिया।

सन् १९०७ में इन्होंने 'कैंब्रिज-विश्वविद्यालय' के ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश किया। उस समय इनकी उम्र सत्रह साल की थी। तीन वर्षों के निरन्तर परिश्रम से इन्होंने सन् १९१० में साइंस कीं डिग्री प्राप्त की। जब ये कैंब्रिज में थे तो इन्हें ला० लाजपतराय, बाबू विपिनचन्द्र पाल और देश के दूसरे नेताओं के, जो उन दिनों निर्वासित हो कर वहां रहते थे, जोशीले भाषणों को सुनने का अवसर मिलता रहता था। जब कभी इन नेताओं को कैंब्रिज में राजनैतिक भाषण करने का अवसर मिलता तो इन्हें उनके दर्शन और कभी कभी उनके साथ संभाषण करने का भी मौका मिलता रहता था। इनके साथ कैंब्रिज में कई अन्य भारतीय युवक भी पढ़ते थे जिनकी अपने देश के राजनैतिक विषयों में विशेष रुचि थी। शिक्षा-समाप्ति के बाद उनमें से इन महानुभावों ने हिन्दुस्तान में आकर राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश किया और जीवनभर कष्ट उठाते रहे और उठा रहे हैं। उनमें से इनके नाम उल्लेखनीय हैं—श्री सेन गुप्त, डा० सेफ्यूदीन किचलू, डा० सय्यद महमूद, नवाब तसद्दक अहमद खां शेरवानी। उस समय पंजाब के सुप्रसिद्ध विद्वान् और राजनीति-विशारद ला० हरदयाल आक्सफोर्ड में रहते थे। पं० जी को उनसे मिलने और विचारपरिवर्तन के कई अवसर मिले थे। इन सब बातों का फल यह हुआ कि जब आगे चलकर इनके भविष्य व्यवसाय के निर्णय का अवसर आया तो यद्यपि इन्हें अपनी योग्यता और पिता

जी के अतुल प्रभाव के कारण सरकारी शासन विभाग में उच्च से उच्च पद प्राप्त हो सकता था तो भी इन्होंने अंग्रेज़ी शासन की मशीन का एक पुर्जा बनना स्वीकार न किया। इस निर्णय में एक कारण यह भी था। कि आई. सी. ऐस. पास करने के लिए इन्हें स्वल्पायु होने के कारण चार साल और विलायत में रहना पड़ता था, परन्तु श्री मोतीलाल जी को अपने एकमात्र पुत्र से और अधिक काल के लिये बिछुड़े रहने का साहस न हुआ। इसलिये इन्हें बैरिस्टरी पास करने के लिए 'इनर टैंपल' में दाखिल होना पड़ा।

सब कालिजों की तरह कैंब्रिज में भी लम्बी छुट्टियां होती हैं। इस अवकाश का सुप्रयोग पंडित जी योरप के अन्यान्य देशों में भ्रमण कर वहां के वृत्त और परिस्थितियों के अध्ययन में करते थे। कई बार श्री मोतीलाल जी भी इनके साथ होते थे। एक दिन की घटना है कि ये अपने एक अंग्रेज़ मित्र के साथ नारवे के एक रम्य-पर्वत-प्रदेश में भ्रमण कर रहे थे। वहां पर इन्होंने एक सुन्दर जल का नाला देखा। स्नान का शौक तो इन्हें था ही, अतः इन्होंने उसमें नहाना शुरू कर दिया। जलप्रवाह का वेग अधिक था इसलिए इनके पांव फिसल गये। इनके अंग्रेज़ साथी ने इन्हें बहते देखा। उसने तुरन्त ही जल में छलांग लगादी और बहुत परिश्रम से इनकी लात को पकड़ कर इन्हें थाम लिया। जल से बाहिर आकर पता लगा कि यदि दो-तीन गज़ तक और इन्हें थाम न लिया जाता तो ये कई फुट की उंचाई से जलप्रपात के साथ नीचे गिर जाते। उस समय परिणाम क्या होता इसका विचार करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

स्वदेश-प्रत्यावर्तन

सन् १९१२ में जवाहरलाल जी बैरिस्टर बनकर स्वदेश को लौट आये और वकालात का व्यवसाय शुरू कर दि‌या, परन्तु इसमें इनका दिल न लगता था। कारण यह था कि योरप के स्वतंत्र वातावरण में रहकर ये स्वतंत्रता के रंग में रंगे जा चुके थे। कोर्ट के बार रूम में इन्हें उन्हीं पुराने ढर्रे के वकीलों और उनकी वैसी ही बातों को सुनना पड़ता था। हर समय इनके कानों में 'कानून' कानून' यही आवाज़ पड़ती थी और उन लोगों से वास्ता रहता था जिनका काम कानून को तोड़ मरोड़ कर अपना उल्लु सीधा करना होता है। इस प्रकार के वातावरण में पंडित जी का जी ऊबने लगा।

शिकार खेलना पंडित जी के दिल बहलाने का एक साधन था। एक दिन इनकी गोली एक हिरण के हृदय में जा लगी जो छटपटाता इनके पास भागता आया और वहीं पर तड़पते तड़पते इनके पांवों पर प्राण दे दिये। उस निरपराध पशु के मोटे मोटे नयनों को अपनी ओर बेबसी की दशा से देखते देखकर इनके हृदय में शिकार से घृणा हो गई।

सन् १९१२ में राजनैतिक लहर की चाल बहुत शिथिल हो चुकी थी। उसमें पुराना बाढ़ का जोश न था। जो बवंडर पहले राजनैतिक वातावरण को विक्षुब्ध किये हुए था, उसने अब वायु के एक साधारण से झोंके का रूप ले लिया था। लोकमान्य तिलक जी जेल भेज दिये गये थे। देश में कोई भी

गर्म दल का नेता रह न गया था । नरम दल के लोगों ने इस सुअवसर से लाभ उठाया । वे मिंटो-मारले स्कीम के अनुसार धारासभा में काम करने लग गये।

यह वही समय था जब अफ्रीका-निवासी गोरे भारतीयों पर अनेक अत्याचार कर रहे थे, नये-नये नियम घड़ कर उनके जीवन को कष्टमय बनाया जा रहा था । यहां तक कि उन्हें सड़क की पटरियों पर भी चलने का अधिकार न था । उन दिनों हमारे पूज्य नेता महात्मा गांधी वहीं थे। उन्होंने उस अत्याचार का प्रतिवाद किया और उन लज्जाप्रद नियमों को तोड़ने के लिये सत्याग्रह का शस्त्र लेकर वे कार्यक्षेत्र में उतरे हुए थे। पर इन्हें भारत की ओर से कुछ विशेष सहायता की आशा न थी क्योंकि कांग्रेस उस समय नरम दल वालों के हाथों में थी । वर्ष के बाद एक मेला जुटा कर धुआंधार संभाषण करना और कुछ प्रस्ताव पास कर सालभर की गाढ़ निद्रा में सो जाना इस दल का कार्यक्रम था । पंडित नेहरू सन् १९१२ के कांग्रेस के अधिवेशन में प्रतिनिधिरूप में सम्मिलित हुए । उन्हीं दिनों श्री गोपाल कृष्ण गोखले अफ्रीका से आये थे और कांग्रेस के उस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे । उनके संभाषणों और प्रतिभा का प्रभाव पंडित जी पर बहुत पड़ा।

कुछ समय बाद प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध शुरू हो गया। देश के नियमों को स्थगित कर उनके स्थान पर नये नये 'आर्डिनेंस' जारी हो गये । थोड़ा बहुत रहा सहा राजनैतिक कार्य भी बन्द हो गया । इसी अवसर पर सरकार ने 'इंडियन डिफेंस फोर्स' तैयार

की जिस में भारतीयों को प्रविष्ट होने का अवसर दिया गया। पंडित जवाहरलाल जी ने भी इसमें प्रविष्ट होना चाहा, परन्तु जब उन्होंने सुना कि श्रीमती एनी वेसेंट को सरकार ने नज़रबंद कर लिया है, तो उन्होंने अपना विचार बदल लिया। यही नहीं, इन्होंने अपने पिता श्री मोतीलाल जी, पं० तेजबहादुर सप्रू और श्री चिंतामणि को भी उससे अलग हो जाने को बाधित किया। श्री मोतीलाल जी पर तो इनका रंग और भी गहरा और वेग से चढ़ना शुरू हो गया था। वे इनके राजनैतिक विचारों की ओर खिंचे चले आ रहे थे। वे मिसिज़ एनी बेसेंट की 'होम रूल लीग' में शामिल हो गये।

पंडित जवाहरलाल का गांधी जी से समागम सर्वप्रथम सन् १९१६ के सितंबर मास में हुआ था। उस समय गांधी जी ने अभी भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया था।

बैरिस्टरी पास करने के बाद पं० जवाहरलाल जी ने वकालत शुरू हो कर दी थी परन्तु इस वृत्ति में इनका जी नहीं लगता था। परमात्मा ने इनके लिए और ही क्षेत्र नियत किया हुआ था। अतः ये सदा उधर ही आकर्षित होते रहते थे। जब पंजाब में जलियांवाले बाग़ की घटना हुई तो पिता और पुत्र दोनों के हृदयों पर गहरी चोट लगी। दोनों राजनैतिक मैदान में कूद पड़े। श्री मोतीलाल जी जो पहले नर्म दल के अगुआ थे अब गर्म दल के नेता बन गये और जब तक जीते रहे बने रहे।

पंडित जी का कमला से विवाह सन् १९१७ की बसंत-पञ्चमी

के दिन दिल्ली में बड़ी धूम धाम से हुआ था। विवाह के पश्चात् ये कश्मीर की सैर को चले गये। इनके संग उनका एक चचेरा भाई भी था। कमला और इनके दूसरे साथी तो श्रीनगर में ही रह गये और ये लद्दाख़ की ओर चले गए। जब ये जोजीला घाटी में घूम रहे थे तो इन्हें कहा गया कि अमरनाथ की गुफ़ा वहां से आठ मील है, बीच में केवल एक हिम का पहाड़ ही पड़ता है। इन्होंने सोचा आठ मील की यात्रा भी कोई यात्रा होती है और फिर उस नवयुवक के लिये जिस के हृदय में जोश हो और पांवों में शक्ति। उस समय ये ग्यारह हज़ार पांच सौ फुट की ऊंचाई पर थे। इन्होंने अपना डेरा उठा लिया और चल पड़े अमरनाथ की यात्रा को। एक गड़रिये की सहायता से ये चढ़ने लगे एक ऊंचे हिमाच्छादित पर्वत पर। रास्ते में इन्हें कई नदी नाले पार करने पड़े। आकाश से गिरती हुई हिम के संपर्क से ठंडी हवा से, जो उस समय ज़ोर से चल रही थी, इनका शरीर सुन्न हो गया, हाथ-पैर ठिठुरने लगे। फिर भी ये चलते ही गये, और पूरे बारह घंटे तक। अंत में इन्हें एक सुविशाल हिम-सरोवर के दर्शन हुए। उसके दर्शन से इनकी सारी की सारी थकावट दूर हो गई। यह स्थान भूमितल से कोई पंद्रह-सोलह हज़ार फुट ऊंचा होगा, अमरनाथ की गुफ़ा से भी लगभग चार हज़ार फुट ऊंचा। वहां से जब आगे चले तो एक जगह पर इनका पांव बर्फ़ पर से फिसल गया और एक सैकड़ों फुट गहरी दरार में जा पहुँचते यदि इनके हाथ में एक रस्सी

न पकड़ी होती। ईश्वर ने इनकी रक्षा की। 'जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय।' इससे भी ये हतोत्साह नहीं हुए और आगे चलते गये। परन्तु आगे चल कर इन्हें भान हुआ कि आगे का मार्ग कठिन ही नहीं अपितु मानवशक्ति से अलंघ्य है। अतः वहीं से फिर लौट पड़े। इस प्रकार इनका अमरनाथ दर्शन की इच्छा अपूर्ण ही रह गई।

राजनीति-क्षेत्र में प्रवेश

योरपीय महायुद्ध की समाप्ति पर लोगों के दिलों में एक तरह की हलचल सी मची हुई थी, वे बेचैन थे। लक्ष्मी वन्तों पर लक्ष्मी की अधिक कृपा हो गई थी और वे अपने बढ़ते हुए धन के प्रयोग के साधन खोज रहे थे। इधर मज़दूर और किसान निर्धनता की चट्टान के नीचे प्रतिदिन अधिकाधिक दबे जा रहे थे। दोनों पक्षों में खींचातानी सी शुरू हो गई थी। इधर मुसलमानों में भी खिलाफ़त की समस्या के हल न होने से बेचैनी बढ़ रही थी। लोगों का विचार था कि महायुद्ध की समाप्ति पर उनके दिन फिरेंगे। और हवा उल्टी ही। 'रौलट बिल' पास किये गये। जनता की आशाओं पर पानी फिर गया। चारों ओर हाहाकार मच गया, रोष की आंधी चल पड़ी। सर्वत्र प्रतिवाद सभायें होने लगीं। उन बिलों के विरोध में जलूस निकलने लगे। लोग बौखला उठे। धर-पकड़ शुरू हो गई।

गांधी जी अभी रोगशय्या से उठे ही थे। उन्होंने वाइसराय से विनय किया कि उन बिलों को पास न किया जाय। पर

उनकी बात अस्वीकृत की गई। अतः वे कार्यक्षेत्र में कूद पड़े और सत्याग्रह शुरू कर दिया। लोग किसी नेता की प्रतीक्षा में थे और जब उन्हें गांधी जी सा नेता मिल गया तो उनके उत्साह का पारावार न रहा, जोश का सागर ठाठें मारने लगा। सर्वत्र प्रतिवाद-सभाएँ हुईं। १३ अप्रैल को वैसाखी के त्योहार के दिन अमृतसर के जलियांवाले बाग़ में हज़ारों लोगों ने मिलकर एक जलसा किया। उस समय पंजाब के गवर्नर ओडवायर साहब थे। उनकी आज्ञा से जनरल डायर ने वहाँ आकर गोली चलाना शुरू कर दिया। सैकड़ों की संख्या में लोगों की हत्या हुई और मार्शल ला जारी किया गया।

जवाहरलाल और दूसरे नेता पंजाब में आना चाहते थे, पर उन्हें आने की अनुज्ञा न मिली। कुछ दिन बाद जब कुछ कुछ शान्ति हुई तो कांग्रेस की ओर से पं० मोतीलाल जी की अध्यक्षता में एक पड़ताल-कमेटी नियत की गई। उसमें जवाहरलाल जी को भी सहायक के रूप में शामिल किया गया।

सन् १९१९ की कांग्रेस का अधिवेशन दिसंबर में लाहौर में रावी के तट पर हुआ। इसके प्रधान श्री मोतीलाल जी थे। इसमें श्री तिलक जी भी सम्मिलित हुए थे। परन्तु सर्वेसर्वा गाँधी जी ही थे। इसी समय पंडित जवाहरलाल को महात्मा जी को बहुत समीपता से देखने और पहचानने का अवसर मिला था।

लाहौर-कांग्रेस में जो कुछ देखा और सुना उससे पंडित जी

बहुत प्रभावित हुए और राजनैतिक क्षेत्र में काम करना आरम्भ कर दिया। सन् १९२० में इनकी माता और धर्म-पत्नी कमला का स्वास्थ्य कुछ अच्छा न था। जवाहरलाल जी को इन्हें मंसूरी ले जाना पड़ा। जिस होटल में ये उतरे थे उसी में कुछ अफ़ग़ानी अफसर भी उतरे हुए थे। सरकार ने उनसे किसी प्रकार का संभाषण आदि न करने का पंडितजी पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे पंडितजी की स्वाभिमानी आत्मा को बहुत ठेस पहुँची। अतः इन्होंने न माना। फल यह हुआ कि इन्हें चौबीस घण्टों के अंदर ही मंसूरी छोड़ने की आज्ञा हो गई। उस समय तो ये वहां से लौट आये परन्तु कुछ दिन बाद पं० मोतीलाल और ये दोनों फिर मंसूरी को चल दिये। इनके मंसूरी पहुंचने से पूर्व ही सरकार ने प्रतिबंध-आज्ञा हटा दी थी। ये पिता-पुत्र की अपूर्व विजय थी।

किसान-आंदोलन

पहले महासमर के बाद किसानों की दशा असह्य हो चली थी। ताल्लुकेदारों के अत्याचार, साहूकारों के क़र्ज़ और दूसरे छोटे-मोटे कर्मचारियों की बेगार की चलती चक्की के नीचे वे पिसे जा रहे थे। बहुत देर से वे इन यातनाओं को सहते चले आ रहे थे, परन्तु अब वे चरम सीमा को पहुँच चुकी थीं, इनके अधिक सहन की उनमें सामर्थ्य न थी। रात दिन एड़ी-चोटी का पसीना एक कर वे अनाज उपजाते थे परन्तु उन्हें एक दाना भी देखना नसीब न होता था। ऐसी दशा में वे बौखला उठे। उनके हृदयों

में चिरात् सुलगती हुई अन्तर्ज्वाला धधक उठी। जब पंडितजी मंसूरी से इलाहाबाद आये, तो प्रतापगढ़ ज़िले का एक किसान-दल, दो सौ के लगभग, इनके पास आया और उसने अपने कष्टों की करुण-गाथा इन्हें सुनाई। उनकी बातों को सुनकर नंगे-भूखे, दलित-पीड़ित भारतवर्ष का एक नया चित्र इनकी आंखों के सामने खड़ा हुआ दिखाई दिया। इनका चित्त दयार्द्र हो गया। इन्होंने किसानों की दशा को अपनी आंखों से देखना चाहा। इस आशा से इन्होंने किसानों में भ्रमण करना शुरू कर दिया। ये उनके साथ रहते उनकी झोंपड़ियों में सोते, उनका दिया भोजन पाते और घंटों उनसे बातें करते। एक प्रकार से वे किसानों के अपने हो गये थे।

वे ग्रीष्म ऋतु के दिन थे। फिर भी इन्हें कई बार दोपहर को कोसों पैदल चलना पड़ता, घण्टों निराहार रहकर केवल पानी पर ही निर्भर रहना पड़ता। कितना अंतर हो गया था किसानों के हृदयसम्राट् जवाहर में और आनन्दभवननिवासी जवाहर में। जहां पहले ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ होते ही मंसूरी, काश्मीर या किसी और पार्वतीय स्थान की ओर ये भागते वहां अब सिर पर केवल एक अगोछा लपेटे दोपहर की कड़ी धूप में कोसों पैदल चल रहे हैं। यह है त्याग की पराकाष्ठा!

सन् १९२१ भर में किसान-आंदोलन जारी रहा। पण्डित जी जो पहले कभी हिन्दुस्तानी में बोले न थे अब किसानों की सभाओं में इनकी धुवांधार वक्तृतायें करने लग गये थे। इनकी बातों को

सुन कर किसानों के उत्साह बढ़ रहे थे। जो पहले एक छोटे से छोटे तालुकेदार के दर्शनमात्र से ही कांपते थे, अब बड़े से बड़े तालुकेदार का भी डट कर सामना करने को उद्यत हो गये थे।

सन् १९२० में कांग्रेस का एक असाधारण अधिवेशन कलकत्ता में हुआ था। ला० लाजपतराय जी जो अभी अमरीका से लौट कर आये थे, उसके प्रधान थे। उस अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। पं० मोतीलाल जी ने भी इस प्रबन्ध में गांधी जी का साथ देने में स्वीकृति दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कौंसिलों का बहिष्कार सफलता से किया गया। इसपर कुछ नेता जो पहले कांग्रेस के साथ थे, इस नीति के कारण इससे अलग हो गये। उनमें श्री जिन्ना का नाम उल्लेखनीय है।

सन् १९२१ का साल जहां एक ओर भारतीय जागृति का वर्ष था, वहां दूसरी ओर सरकारी दमन-नीति का चक्र भी इसमें अधिकाधिक जोर से चलता रहा। बड़े बड़े नेता पकड़े जाने लगे।

पकड़धकड़ और जेल-यातनाओं का तांता सा लग गया, विशेषतः संयुक्त प्रांत और बंगाल में। पंडित जी भी जब कांग्रेस के कार्यालय में काम कर रहे थे तो पुलिस द्वारा पकड़े जा कर जेल भेज दिये गये। इस यात्रा में इनके साथ इनके पिता जी भी थे। जवाहरलाल जी को छै मास की क़ैद का दंड दिया गया, परन्तु तीन मास का ही दंड भुगतने पर इन्हें छोड़ा गया।

दमन का दौर सारे देश में जोर से चल रहा था, परन्तु गांधी जी जो सत्याग्रह की बागडोर को पकड़े हुए थे अभी जेल से बाहिर थे। पंडित जी कारावास से छूट कर इन्हें मिलने को चले ही थे कि उनके पास पहुँचने से पूर्व ही वे बन्दी हो गये थे निराश होकर ये अलाहबाद लौट आये। इन्होंने विदेशी माल बेचने वाली दूकानों पर धरना देने की घोषणा कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि ये कुछ दूसरे साथियों के साथ फिर बन्दी किये गये।

कारावास में अब पहले जैसी सुविधायें न थीं। पहले इन्हें एकान्त मिल जाता था परन्तु अब इनके साथ लगभग पचास और बन्दी भी थे जिनके कोलाहल में इन्हें कभी एकान्त-चिन्तन का समय न मिलता था। सरदी के दिनों में जब इन्हें अधिक सरदी लगती तो चरसे के द्वारा कुएं से पानी निकाल निकाल कर शरीर को गरम कर लेते, और रात का जब नींद न आती तो आकाश के तारागण के परिचय में समय बिताते।

सन् १९२२ के आरम्भ में जब सरकार ने देखा कि राजनैतिक वातावरण कुछ शान्त सा हो गया है तो सब राजनैतिक बंदियों को मुक्त किया गया। पंडित जी भी इन मुक्त बंदियों में थे। जेल से बाहिर आकर इन्हें यह देखकर बहुत निराशा हुई कि कांग्रेस के नेताओं में बहुत सा मत-भेद खड़ा हो गया है। कुछ कौंसलों में प्रवेश के पक्ष में हैं और कुछ उनका बहिष्कार करना चाहते हैं। पंडित जी स्वयं कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध थे परन्तु जो उसके पक्ष में थे उनमें पंडित

मोतीलाल जी, सी० आर० दास, वल्लभ भाई पटेल आदि कुछ चोटी के नेता थे। इनकी नीति की अवहेलना करना ज़रा कठिन और साथ ही दूरदर्शिता के विरुद्ध था। इस लिए इन्हें भी उनकी नीति के सामने झुकना पड़ा। उन्हीं की आज्ञा से इन्होंने इलाहाबाद म्युनिसिपल कमेटी के सभापति का पद भी स्वीकृत किया।

पंडित जी के सामने एक और समस्या थी जो कुछ देर से इनके चित्त को अशान्त किये हुए थी। इनके पिता चाहे लाखों की सम्पत्ति के स्वामी थे तो भी ये उन पर निर्भर रहना न चाहते थे। इनका अपना और इनकी स्त्री का जीवन बहुत साधारण था। खादी पहनने को, साधारण भोजन खाने को और तीसरे दर्जे का रेल-भाड़ा यात्रा को, यही इनकी मुख्य आवश्यकतायें थीं। फिर भी वे चाहते थे किसी पर निर्भर न रहना, अपनी आजीविका स्वयं कमाना। इनके इस विचार का पता जब इनके पिताजी को लगा तो उन्होंने इन्हें समझाया कि एकाकी पुत्र होने के कारण तुम ही मेरी सम्पत्ति के अधिकारी हो, अब भी और मेरे पीछे भी। अतः आय-व्यय का प्रश्न मुझ पर छोड़ो और जिस काम को तुमने हाथ में लिया है उसे ही जी जान से निभाते चलो। इस पर पंडित जी पिता जी से सहमत हो गये।

सन् १६२३ में नाभा-नरेश ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वराज्य से निर्वासित किया गया। अकाली सिक्खों ने इसका प्रतिवाद किया और जैतो में सत्याग्रह शुरू कर दिया। पंडित जी कुछ साथियों को लेकर वहां की स्थिति के अध्ययन के लिए नाभा की ओर

चले, परन्तु नाभा की सीमा के अन्दर प्रवेश करते ही इन्हें पकड़ लिया गया और षड्यंत्र का अभियोग चलाकर दो-अढ़ाई वर्ष का दण्ड दे दिया गया। परन्तु कुछ ही समय बाद इन्हें छोड़ दिया गया।

सन् १९२३ में कांग्रेस का जो अधिवेशन किकनाडा में हुआ था, उसके अध्यक्ष मौलाना मुहम्मद अली थे। वे जवाहर लाल जी की दक्षता और कार्यनिपुणता पर मुग्ध थे। अतः उन्होंने इन्हें ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का मन्त्री बनने को बाधित किया। पंडित जी यद्यपि अभी इतने भारी बोझ को उठाने को उद्यत न थे तो भी मौलाना की आज्ञा की अवहेलना भी न कर सके। तब से इन्हें कांग्रेस की मशीनरी के कलपुर्जों को भीतर से देखने भालने का अवसर मिलने लगा।

सन् १९२४ में साम्प्रदायिक दङ्गों का ज़ोर था। साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए दिल्ली में 'मिलाप कान्फ्रेंस' का एक अधिवेशन हुआ, परन्तु कुछ सफलता न मिली। कान्फ्रेंस का अधिवेशन अभी समाप्त ही हुआ था कि जवाहरलाल जी के अपने निवासस्थान, अलाहाबाद में भीषण दङ्गा हो गया। इससे इन्हें बहुत निराशा और मानसिक कष्ट हुआ। उस समय इनकी आंखों के सामने अपने बचपन के वे चित्र आ उपस्थित हुए कि किस तरह इन्हें मुन्शी मुबारक गोद में उठा कर दशहरे और मुहर्रम के जलूस दिखाया करता था, किस तरह वह इन्हें घर ले जा कर सेवियां और मिठाई खिलाता था, किस तरह इन्हें गोद में ले कर

किस्से-कहानियां सुनाया करता था, किस तरह उसकी गोद में इन्हें असीम आनन्द का अनुभव हुआ करता था। कैसे शुभ थे वे दिन! उस समय सांप्रदायिकता की गन्ध तक न थी, हिन्दू-मुसलमान सब भाई-भाई थे। हिन्दू की विपत्ति पर मुसलमान जान देता था और मुसलमान के लिए हिन्दू प्राण देता था। पर अब इसके बिल्कुल विपरीत था।

जवाहरलाल का सारा का सारा समय राजनैतिक उलझनों को सुलझाने में ही व्यतीत हो रहा था और जो कुछ भी शेष बचता वह इलाहाबाद म्युनिसिपल कमेटी की प्रधानता के कार्य में चला जाता। इन्हें एक क्षण भी अपनी और अपने परिवार की देख-भाल के लिए न मिलता। उन दिनों कमला का स्वास्थ्य बहुत कुछ बिगड़ा था। उसे लखनऊ हस्पताल में प्रविष्ट कराया गया था। वहां भी उसकी दशा सुधरी न थी। पंडित जी अनुभव करते थे कि मैं पति-धर्म का पालन पूर्ण रूप से कर नहीं रहा। पर करते क्या? देशसेवा के कार्य में शिथिलता करना भी उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। इनके सामने विचित्र समस्या थी। डाक्टरों ने बहुत निरीक्षण के बाद निर्णय किया कि कमला को स्विटज़रलैंड में भेजा जाए। इससे पंडित जी को भी सहमत होना पड़ा और सन् १९२६ के मार्च के आरम्भ में अपनी स्त्री कमला, बेटी इन्दिरा और कुछ अन्य सम्बन्धियों के साथ स्विटज़रलैंड को चल दिये।

दूसरी योरप-यात्रा

जब पहले पंडित जी कैम्ब्रिज में थे उस समय को तेरह वर्ष व्यतीत हो गये थे। संसार की द्रुतगति ने यहां और वहां के वातावरण को बहुतसा बदल दिया था। पहले वे एक विद्यार्थी थे पर अब स्वदेश की स्वतन्त्रता की लगन में पूरे रंगे हुए एक अग्रसर नेता थे। यद्यपि ये देश से दूर, बहुत दूर चले गये थे, परन्तु इनकी विचारधारा से कभी भारत दूर नहीं हो सका था। वहां पर पहले से अधिक अवकाश मिलते रहने के कारण यहां की परिस्थितियों के सिंहावलोकन का इन्हें प्रचुर समय मिलता रहता था। पर कर धर कुछ भी नहीं सकते थे क्योंकि जिस कार्य के लिए कार्यक्षेत्र से अलग हुए थे उस कर्तव्य का पालन करना इनका मुख्य ध्येय था। कमला के स्वास्थ्यसुधार के निमित्त इन्हें जिनेवा और मानटाना में रहना पड़ा। इन स्वास्थ्यसुधारक स्थानों में रह कर कमला का स्वास्थ्य कुछ सुधरने लगा। जब वह बहुत कुछ सुधर गयी तो ये उसे लेकर फ्रांस, इंगलैंड और जर्मनी को भ्रमणार्थ चले गये।

योरप के लोग बहुत व्यायामप्रिय और क्रीडाप्रिय होते है। वहां प्रत्येक ऋतु के उपयुक्त नये नये खेल होते रहते हैं। जब ये फ्रांस आदि देशों मे भ्रमण कर रहे थ तो वह जाड़े का मौसम था हिम आकाश से जब फाहों समान गिरती तो बड़ी भली लगती थी। लोग फिसलखड़ाऊं पहने बरफ पर फिसलते और खेलते थे। उन्हें देख कर इनका हृदय भी उसी खेल की ओर फिसला

थे भी उसी तरह बरफ पर दौड़ने-फिरने का यत्न करने लगे। पहले तो इन्हें अनभ्यासवश कुछ अड़चन प्रतीत हुई, परन्तु शीघ्र ही निरन्तर परिश्रम से ये भी उसके अभ्यासी हो गये। इनका दिल उस खेल में इतना तन्मय हो जाता था कि उस समय सुध बुध तक भूल जाते थे।

जब पंडित जी बर्लिन में थे तो इन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रसेल्स में पददलित जातियों की एक कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला है। उसमें चीन, जावा, इंडोचायना, श्याम, मिसर और योरपी अफ्रीका आदि के प्रतिनिधि भाग लेने वाले हैं। पंडित जी भी कांग्रेस द्वारा भारत के प्रतिनिधि चुने गये। सभा का अधिवेशन सन् १९२७ की फर्वरी में हुआ। उस बैठक में सम्मिलित होकर और अन्यान्य साम्राज्यविरोधी देशों के प्रतिनिधियों से मिलकर इन्हें उन देशों की आन्तरिक दशा और समस्याओं का ज्ञान हुआ। इंग्लैंड के मज़दूर-संघ के नेता जार्ज लंसबरी उस सभा के प्रधान थे।

सन् १९२७ के ग्रीष्म ऋतु में पंडित जी के पिता श्री मोतीलाल जी इनके पास योरप पहुँच गये। इसी अन्तर में इनकी इच्छा मास्को-भ्रमण की हुई। इन्हें अवसर तो केवल चार-पाँच-रोज़ का ही मास्को देखने को मिला परन्तु उस थोड़े समय में ही जो कुछ इन्होंने वहां देखा और इन्हें दिखाया गया, उससे ये बहुत प्रभावित हुए। मास्को से लौट कर पंडित जी की इच्छा भारत को वापस आने की हुई। एक तो इससे बिछुड़े इन्हें बहुत समय हो गया था, दूसरे कमला जी की दशा भी बहुत

कुछ सुधर चुकी थी, तीसरे दिसम्बर में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में ये सम्मिलित होना चाहते थे। श्री मोतीलाल जी कुछ काल के लिये वहीं रह गये, क्योंकि उन्होंने प्रिवी कौंसल में एक मुकद्दमें की पैरवी करनी थी। अतः जवाहरलाल जी लौट आये।

फिर भारत में

जब पंडित जी योरप में थे तो इनके पीछे कई नयी नयी समस्यायें सुलझने को थीं। ये स्वतंत्र देशों से नये नये विचार लेकर आये थे। और आते ही इन्हें राजनैतिक क्षेत्र में फिर कूदना पड़ा। मद्रास-कांग्रेस के अधिवेशन में इन्होंने अपनी रुचि और अनुभव के अनुकूल कई प्रस्ताव प्रस्तुत किये जो लगभग सबके सब, स्वीकृत हो गये। इन्हें ही पुनः साधारण मन्त्री बनाया गया।

सन् १९२९ में कांग्रेस का चिरस्मरणीय अधिवेशन दस साल बाद फिर लाहौर में रावी के तट पर हुआ। पंडित जवाहरलाल जी इसके प्रधान थे। वहां पर इनका स्वागत अपूर्व समारोह से किया गया, क्योंकि ये भारतीय जनतामात्र के साधारणतः और नवयुवकों के विशेषतः हृदयसम्राट् बन चुके थे। साथ ही इनके परिवार के त्याग से भी लोग प्रभावित हो चुके थे।

इस समय कांग्रेस नर्म दल के नेताओं के हाथ से निकल कर उत्साहसम्पन्न प्रगतिशील वर्ग के हाथ में आ चुकी थी। लोग आगे कदम बढ़ाने को तिलमिला रहे थे। पंडित जी ने जनता की नाड़ियों में उछलते हुए रक्तसंचार को देख कर उससे लाभ उठाना चाहा।

३१ दिसम्बर १९२९ की रात के ठीक बारह बजे लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। यह कांग्रेस का और विशेषतः पंडित जी का एक बहुत आगे चलने वाला पग था, जिसे दृढ़ता से आगे आगे और उससे भी आगे रखने का इन्होंने प्रण किया था और ईश्वर की कृपा से आज तक उस प्रण को निभाते चले आ रहे हैं। उस दिन से कांग्रेस का और इनका पग आगे आगे ही चल रहा है, एक इंच भी पीछे नहीं हटा। इस अधिवेशन की एक और विशेषता थी। इसमें उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत सरदार अब्दुलग़फ़्फ़ार खां के नेतृत्व में पूर्णरूपेण कांग्रेस में सम्मिलित हुआ था।

लाहौर-कांग्रेस के प्रभाव से भारत में एक सिरे से दूसरे सिरे तक अपूर्व जोश उत्पन्न हो गया। लोग नेताओं की आज्ञा पालन करने को तैयार थे, एक संकेतमात्र की प्रतीक्षा थी। दूरदर्शी गांधी जी ने इसे देखा, मनन किया और अन्त में सत्याग्रह और असहयोग द्वारा आंदोलन शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप बड़े बड़े नेता बन्दी हो गये।

आनन्द-भवन

आनन्द-भवन को श्री मोतीलाल जी ने बड़े चाव से बनवाया था। इसके निर्माण में लाखों रुपये खर्च हुए थे। योरप, अमरीका और फ्रांस आदि सुदूर स्थानों में जहां कहीं भी सजावट का समान प्राप्य था वहीं से उसे लाकर इसे सजाया गया था। यहीं पर पं०

मोतीलाल जी के यौवन और बुढ़ापे के दिन व्यतीत हुए थे। इसीसे जवाहरलाल जी के जीवन के इतिहास का सम्बन्ध था। इसी में नेहरु परिवार फल फूल रहा था। कांग्रेस के अमृतसर-अधिवेशन के बाद श्री मोतीलाल जी का विचार हुआ कि उस भवन को कांग्रेस की भेंट किया जाय। जब समस्त परिवार ही एक तरह से देश को अर्पित हो चुका था तो इस भवन को अर्पित करने में क्या हिचकिचाहट हो सकती थी। जवाहरलाल जी तुरन्त सहमत हो गये। होते भी क्यों न! ऐसे स्वर्ण-अवसर की तो ये उत्सुकता से प्रतीक्षा में थे। पिता और पुत्र दोनों गांधी जी से मिले और उनके परामर्श से इसे कांग्रेस के हवाले कर दिया। तब से इनका नाम स्वराज्य-भवन है। तभी से इसमें कांग्रेस कमेटी का कार्यालय स्थापित है। कमला जी की मृत्यु के बाद इसका एक वृहत् भाग उनके संस्मारक हस्पताल के रूप में परिणत किया गया। इस रूप में फिर इसका नेहरु परिवार से अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। अब यह भी निर्णय हुआ है कि इसमें एक नया भाग बनवा कर आज़ाद जी की धर्मपत्नी की स्मृति में जोड़ा जाय।

फिर जेल को

गांधी जी का सत्याग्रह आंदोलन यौवन पर था। सब जगह नेताओं और स्वयंसेवकों की धरपकड़ जारी थी। १४ अप्रेल, सन् १९३० को पंडित जी को भी बन्दी किया गया और छै मास की सज़ा दे कर नैनीताल जेल में भेज दिया गया। इसके बाद इनके पिता जी को भी दंड दे कर उसी जेल में भेज दिया गया। परन्तु कुछ समय बाद श्री मोतीलाल जी के स्वास्थ्य के

बहुत गिर जाने के कारण उन्हें छोड़ दिया गया। इसके बाद जवाहरलाल जी को भी दंड की अवधि समाप्त होने पर मुक्त किया गया ।

कारावास से निकलते ही पंडित जी फिर किसान-आंदोलन में जुट गये। इसका परिणाम यह हुआ कि पांचवीं बार ये फिर उसी जेल में भेजे गये ।

सत्याग्रह-आंदोलन में स्त्रियों ने जो भाग लिया था वह भारत के ही नहीं संसार भर के इतिहास में अपूर्व सत्ता रखता है । कमला जी, माता स्वरूपरानी और नेहरू परिवार की सब महिलायें अपूर्व समारोह के साथ इस आंदोलन का नेतृत्व कर रही थीं । सन् १९३१ की प्रथम जनवरी को कमला जी पकड़ी गईं । बन्दी होते समय उन्होंने बहुत उल्लास प्रकट किया और कहा कि मुझे अत्यन्त गर्व है कि मैं स्वामी जी के चरण-चिह्नों पर चल रही हूं ।

कुछ दिनों के बाद कमला को और साथ ही पिता जी के अधिक रुग्ण हो जाने के कारण पंडित जी को भी दंड की अवधि समाप्त होने से पहले ही छोड़ दिया गया। इनके साथ ही गांधी जी और कुछ अन्य नेता भी उन्मुक्त हो गये ।

पं० मोतीलाल जी की शारीरिक अवस्था दिनों दिन बिगड़ रही थी। उपचार का कोई असर नहीं हो रहा था । अन्त में जनवरी मास में उनका लखनऊ में प्रस्थान हो गया । इस मृत्यु से जवाहरलाल जी को बहुत कष्ट हुआ। क्योंकि पंडित जी उनके

पिता ही न थे अपितु स्वतन्त्रता-संघर्ष में एक दूरदर्शी नेता और साथी थे ।

वायसराय लार्ड इर्विन की इच्छा के अनुसार गांधी जी का उनके साथ एक समझौता हुआ, जो दिल्ली-समझौते के नाम से प्रसिद्ध है । इसके अनुसार सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित किया गया और कांग्रेस ने दूसरी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेना स्वीकार किया । पंडित जवाहरलाल जी इस समझौते की कुछ शर्तों के विरुद्ध थे तो भी गांधी जी के कहने पर ये सहमत हो गये ।

निरन्तर जेल-यात्रा, पिता जी की मृत्यु, कमला की बीमारी, इन सब कारणों से पंडित जी का स्वास्थ्य प्रतिदिन गिर रहा था। डाक्टरों का विचार था कि यदि ये कुछ समय तक पूर्ण आराम न करेंगे तो दशा के और भी बिगड़ जाने का भय है । परन्तु भारत में इन्हें आराम मिलना असंभव था। प्रतिदिन नई से नई उपस्थित होती हुई घटनाओं में ये तटस्थ कैसे रह सकते थे। इसलिये इन्होंने लंका जाने का विचार किया । वहां रह कर इनका स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर गया। वहां से लौट कर फिर ये देशसेवा और किसान- आंदोलन के कार्य में जुट गये। संयुक्त प्रान्त में किसानों पर जो अत्याचार हो रहे थे उनके विरुद्ध इन्होंने आवाज़ उठाई । इन दिनों ये बहुत कार्य-व्यग्र रहते थे । एक तो इन्होंने यह बोझ उठाया हुआ था, दूसरे इन्हें कांग्रेस के काम के लिए कभी बंगाल और कभी बम्बई के दौरे करने पड़ते थे । साथ ही

किसान आंदोलन का नया और बहुत भारी बोझ इनके कंधों पर आ पड़ा था ।

एक दिन बंबई से लौट कर पंडित जी अलाहाबाद पहुंचे । वहां पर इन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि आप अलाहाबाद से बाहर नहीं जा सकते । इन्होंने इस आज्ञा का भंग किया और बंबई को फिर गांधी जी के, उनके इंगलैंड से लौटने पर, स्वागत के लिये चल पड़े । रास्ते में ही उन्हें बन्दी किया गया । कुछ दिन के बाद इनकी दोनों बहनें भी कारावासिनी हो गईं ।

दिसंबर १६३१ से ३० अगस्त १६३३ तक पंडित जी जेल में रहे । इसी अन्तर में इनकी माता स्वरूपाराणी जी बहुत बीमार हो गईं । जब उनकी दशा बहुत बिगड़ती प्रतीत हुई तो इन्हें दंड की अवधि की समाप्ति से तेरह दिन पहले मुक्त किया गया। आते ही इन्होंने जी तोड़ कर उनकी सेवा की जिससे वे कुछ अच्छी हो गईं, परन्तु रहीं वे बहुत समय तक हस्पताल में ही।

कमला

१४ जनवरी, १६३४ का दिन था। पंडित जी अपने गृह के बरामदे में बैठे कुछ किसानों के साथ किसान-समस्या पर विचार कर रहे थे। पास ही कमरे में इनकी माता जी और कमला रुग्ण-शय्या पर पड़ी थीं। अचानक गड़गड़ाहट का शब्द हुआ। इनके पांव लड़खड़ाने लगे । यह भूकम्प था । पास बैठे हुए लोगों ने इन्हें भागने को विनय किया । पर ये नहीं माने । किस तरह ये पूज्य माता और प्यारी कमला को रुग्णशय्या

घर छोड़ कर भाग सकते थे ! उसी रात को इन्होंने कमला के रोगोपचार के लिए कलकत्ता को प्रस्थान किया । वे चाहते थे कि पुनः जेल जाने से पूर्व कम से कम कमला के उपचार का प्रबन्ध किया जाय । कलकत्ता में जाते समय मार्ग में इन्हें पता लगा कि भूकम्प से बहुत विनाश और हानि हुई है । यह सुन कर पंडित जी जैसे देशभक्त के चित्त को शान्ति कैसे मिल सकती थी ! इन्होंने उन उन स्थानों में भ्रमण किया जहां भूकम्प से विनाश हुआ था । इस दौरे में इन्हें कभी भी पूरी निद्रा का योग नहीं मिलता था । कई मीलों तक टूटी-फूटी सड़कों पर खंडहरों में घूमना पड़ता था । चालीस-चालीस घंटे अनाहार रहना पड़ता था । इन्हें कष्ट तो अवश्य था किन्तु इन्हें देखकर विपद्‌ग्रस्त लोगों को धैर्य मिलता था ।

इस दौरे से लौट कर पंडित जी इलाहाबाद पहुँचे । दौरे की थकावट से वे चूर थे । इन्होंने अभी विश्राम भी न किया था कि कलकत्ता के एक वारंट के आधार पर इन्हें फिर पकड़ कर अलीपुर जेल में भेजा गया । वहां पर इन्हें दो साल कारावास का दंड मिला । अभी तक ये केवल पांच मास ही जेल से बाहिर रहे थे । परन्तु इन पांच मासों में इन्होंने बहुत कुछ काम कर लिया था । इन्हें अब केवल कमला के स्वास्थ्य की ही चिंता थी ।

अलीपुर जेल से इन्हें देहरादून जेल में लाया गया । यहां पर इन्हें पता लगा कि कमला का बीमारी अधिक भीषण होती जा रही है । जब उसकी दशा और भी बिगड़ गई तो इन्हें कमला के

स्वास्थ्य सुधरने के अवसर तक जेल से बाहिर रहने दिया गया। उन दिनों जब कभी ये कमला के जीर्ण शीर्ण देह को देखते तो इनके चित्त में विचार उठता कि इसकी दुर्दशा का कारण मैं ही हूँ। मैं अपने पति-धर्म का पालन नहीं कर रहा हूँ।

निरन्तर कुछ उपचार करते रहने से कमला की दशा कुछ सुधर गई और ग्यारह दिनों की मुक्ति के बाद पंडित जी को फिर अपने जेल को जाना पड़ा। उनके जाने के कुछ ही दिन बाद कमला की अवस्था फिर शोकजनक हो गई। इन्हें फिर इसी तरह मियादी छुट्टी मिल गई और साथ ही सरकार की ओर से संकेत भी किया गया कि यदि ये रिहाई की अवधि तक राजनैतिक मामलों में भाग न लेने का प्रण करें तो इन्हें उन्मुक्त किया जा सकता है। परन्तु पंडित जी इसे कैसे स्वीकार कर सकते थे! इनकी इस्पात की आत्मा इस आग से कैसे पिघल सकती थी! जब कमला को इस बात का पता लगा तो उसने भी कहा—'आपको मेरी सौगन्ध! किसी शर्त पर रिहाई को स्वीकार न करना।' जीवन और मृत्यु के संघर्ष में छटपटाती हुई प्रबल आत्मा की यह आवाज़ थी। ऐसी ही देवियों के प्रताप से स्त्रीजाति को शक्ति कहा गया है। उसकी अस्वीकृति का परिणाम यह हुआ कि ये अलमोड़ा जेल में लाये गये और कमला को भुवाली में ले जाया गया।

अलमोड़ा जेल में रहकर इन्हें दो चार बार कमला को मिलने के लिए भुवाली लाया गया। जब दोनों पति-पत्नी मिलते तो उन्हें

अपार आनन्द होता, परन्तु वियुक्त होते समय कमला की हृदय-कली फिर मुरझा जाती, उसके हृदय में सदा यही खटका रहता कि यह समागम कहीं अन्तिम न हो। भवाली में भी उसका रोग शान्त न हुआ। पंडित जी इससे बहुत व्यग्र रहते थे। व्यग्रता के सिवाय वे और कर ही क्या सकते थे! अन्त में कुछ [विमर्श के बाद उपचार के लिए उसे जर्मनी भेजा गया, परन्तु वहां भी रोग की क्रांति रुक न सकी, बल्कि वह बढ़ता ही गया। अन्त में चार सितम्बर के दिन पण्डित जी को अलमोड़ा से मुक्त किया गया और ये तुरन्त हवाई-जहाज़ के द्वारा कमला को मिलने के लिए जर्मनी को चल दिये।

पण्डित जी के पहुंचने पर कमला का स्वास्थ्य फिर कुछ सुधर गया। जर्मनी से ये इंगलैंड चले गये। वहां पर भी चाहे कमला बीमार ही रही तो भी ये स्वदेश-सेवा के कर्तव्य से कभी विमुख नहीं हुए। बड़े बड़े जलसों में सम्मिलित होकर भारत-स्वतंत्रता के विषय में व्याख्यान देते रहे और वहां के नेताओं के आगे कांग्रेस का दृष्टिकोण रखते रहे। वहां कुछ दिन रह कर ये पुनः भारत लौट आये। इन्हें फिर १९३६ के आरंभ में योरप जाना पड़ा क्योंकि कमला का स्वास्थ्य अब भी गिर रहा था, एक तरह से वह मृत्यु से संघर्ष कर रही थी। अन्त में २८ जनवरी, १९३६ को वह वीरबाला अपने स्वामी की गोद छोड़ कर परमात्मा की गोद में चली गई।

वैसे तो नेहरू परिवार के प्रत्येक व्यक्ति ने संसार के सामने

अद्वितीय त्याग का आदर्श स्थापित किया है, परन्तु कमला का त्याग उन सब से अधिक है। विवाह के समय एक स्त्री जो जो उमंगें लेकर पतिगृह में आती है, उन सब को उसे हृदय में ही दबाना पड़ा। उसे एक बार भी पतिदेव के साथ जी भर कर बैठने का संयोग नहीं मिला। पंडित जी की आयु का बहुत बड़ा भाग कारावास की सीखचों के पीछे गुज़र रहा था और उसका बाहिर वियोग में तड़पते तड़पते। परन्तु उस वीरबाला के मुख से एक बार भी 'आह' तक नहीं निकली। हृदय की ज्वाला उसके हृदय को ही जलाती रही। रुग्णावस्था में भी उसकी इच्छा सदा पतिदेव के चरणचिह्नों पर चलने को रहती। जब कपड़े की दूकानों पर धरना देने के कारण उसे कारावास हुआ तो उस समय उन्हें अपार हर्ष हुआ था। पंडित जी जिस मार्ग पर चल रहे थे, उसमें कभी उसने बाधा नहीं डाली, अपितु अपनी सदिच्छाओं से उसे साफ करती रही। यदि पंडित जी को अपने ध्येय में सफलता मिलती रही तो उसका एक बड़ा कारण कमला का सहयोग था। ऐसी सहधर्मिणी से सदा के लिए वियुक्त हो कर पंडित जी के हृदय को कितना बड़ा आघात लगा होगा! परन्तु उसे इस वीर पुरुष ने धैर्य और साहस से सहन किया। भारत और संसार की बड़ी बड़ी संस्थाओं और व्यक्तियों ने इनके साथ सहानुभूति प्रकट की।

दूसरी बार कांग्रेस के प्रधान

११ मार्च, १९३६ को पंडित जी ने हवाई-जहाज़ द्वारा भारत को

व धारण किया। इससे पहले इन्हें यह समाचार मिल चुका था कि इन्हें आगामी लखनऊ-कांग्रेस के अधिवेशन का प्रधान चुना गया है। परन्तु उस अधिवेशन की कार्यवाही के अन्तर में ही इन्हें पता लगा कि इनके अग्रसर विचारों के साथ दूसरे नेता चलने को तैयार नहीं हैं। इन्होंने 'सांप्रदायिक निर्णय' (Communal award) का भी विरोध किया परन्तु इनकी कुछ न चली। पंडित जी उन व्यक्तियों में से हैं जो अपने मन्तव्य के प्रतिपादन में कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं होते। इन्होंने इस लिए कुछ विमर्श के बाद प्रधानपद को त्यागने का निश्चय कर लिया। परन्तु गांधी जी और दूसरे नेताओं के आश्वासन देने पर इन्होंने उस निश्चय को कार्य में परिणत नहीं किया।

सन् १९३६ में कांग्रेस ने प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में प्रविष्ट होने का निर्णय किया। पंडित जी इस नीति के सहमत न थे तो भी इन्होंने उम्मीदवारों की सफलता के लिए बहुत प्रयत्न किया। चार मासों की अवधि में इन्होंने लग-भग पचास हजार मीलों की यात्रा की। जहां ये गये इनका अपूर्व समारोह से स्वागत हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस की चलती चक्की के आगे जो भी आया पिस गया और कांग्रेस को चुनावों में पूर्ण सफलता मिली। पं० जी की यह बहुत बड़ी विजय थी।

कांग्रेस के नये अधिवेशन का समय आ गया। जनता इस साल भी इन्हें ही प्रधानपद पर सुशोभित करने को

तैयार थी, परन्तु इन्होंने घोषणा करदी कि मैं उसे स्वीकार न करूंगा। जहां दूसरे लोग इस पद के लिए लालायित रहते हैं, वहां इन्होंने उसे ठुकरा दिया।

पण्डित जी ने कई बार योरप की यात्रा की हुई है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अभिज्ञ हैं। ये भारत को कूपमण्डूक नहीं बनाना चाहते। उसका सम्बन्ध उसकी परिधियों से सम्बद्ध देशों से करना चाहते हैं। अतः सन् १९३७ में ये ब्रह्मा और मलाया को चले गये। उन दिनों चीन और जापान में संग्राम हो रहा था। वहां पर इन्होंने चीन के अनुकूल और जापान के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

सन् १९३८ में जवाहरलाल जी फिर योरप चले गये। वहां पर इन्होंने संसार के बड़े बड़े नेताओं से परिचय प्राप्त किया और स्पेन में कुछ व्याख्यान दिये। इसके बाद ये भारत लौट आये।

भारत में आकर इन्होंने फिर कांग्रेस का कार्य पूरे उद्योग से शुरू कर दिया। उन्हीं दिनों कुछ रियासतों और उनकी प्रजा में तीव्र संघर्ष चल रहा था। पंडित जी को नाभा रियासत के शासन का पहले ही अनुभव था, अतः इन्होंने रियासती प्रजा का पक्ष लिया और जब रियासती प्रजा मंडल की नींव डाली गई तो ये उसके प्रथम प्रधान बनाये गये।

अगस्त, सन् १९३९ में जब योरप का दूसरा संग्राम छिड़ जाने को था, तो पंडित जी ने चीन की यात्रा की। वहां ये चीन के

प्रधान चियाँग काई-शेक और उसकी धर्मपत्नी से मिले और उनसे घनिष्ठता प्राप्त की । इस सम्बन्ध से भारत को बहुत लाभ हुआ, क्योंकि पीछे पता लगा कि चियांग-काई-शेक ने भारत-स्वतंत्रता के लिए अंग्रेज़ शाशकों, और अमरीका के प्रधान पर बहुत दबाव डाला था ।

योरप का विश्वव्यापी संग्राम छिड़ते ही पंडित जी भारत लौट आये । यहां पर इनकी प्रतीक्षा हो रही थी क्योंकि कांग्रेस इनके विमर्श के बिना संग्राम के विषय में कुछ भी मत प्रकट करने को तैयार न थी । इनके आने पर कांग्रेस ने इनके कथनानुसार जिस प्रस्ताव को स्वीकार किया उससे सरकार को रोष हुआ । परिणाम में धर-पकड़ शुरू हो गई । इधर कांग्रेस ने भी प्रांतीय शासन की बागडोर को छोड़ दिया । इससे सरकार और कांग्रेस का संघर्ष फिर जारी हो गया । उस समय नेहरू जी का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली बन चुका था । इनके भाषणों का प्रत्येक शब्द भारत में ही नहीं अपितु इसके बाहर चुकिंग, लंदन, न्यूयार्क और वाशिंगटन आदि में भी आदर और ध्यान से सुना और पढ़ा जाता था । अतः इस आड़े समय में इनका स्वतंत्र रहना सरकार को खटक रहा था । ३१ अक्टूबर, सन् १९४० को जब ये वर्धा से लौट रहे थे तो इन्हें बंदी किया गया और पांच नवम्बर को चार साल का कड़ा दंड दिया गया। परंतु ४ दिसम्बर, सन् १९४१ को ही इन्हें उन्मुक्त किया गया ।

सन् १९४२ में जर्मनी की सेनायें बवंडर के ज़ोर से बढ़ रही

थीं, इधर जापान ने भी मित्र-शक्तियों के विरुद्ध युद्ध शुरू कर दिया था। इस आड़े समय में भारत को असन्तुष्ट और विरुद्ध रहने देना इगलैंड के लिए उपयुक्त न था। अतः प्रधानसचिव श्री चर्चिल ने क्रिप्स साहब को समझौते की कुछ शर्तें देकर भारत में भेजा। सिमला में सब भारतीय नेता और मुस्लिमलीग के प्रधान श्री जिन्ना साहब भी बुलाये गये। इस कान्फ्रेंस में नेहरू जी ने बहुत बड़ा भाग लिया था। उस समय प्रतीत हो रहा था कि दोनों देशों में समझौता हो जायगा परन्तु ठीक अन्तिम समय में यह टूट गया और क्रिप्स साहब निराश होकर लौट गये।

८ अगस्त, सन् १९४२ के दिन बंम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी का अधिवेशन हुआ और ९ अगस्त को सब के सब प्रमुख नेता, जिनमें गांधी जी और नेहरू जी भी थे, बन्दी कर लिये गये। देशभर में कुहराम मच गया। लोगों के रोष की सीमा न रही। फलतः कई प्रान्तों में विशेष दुर्घटनायें हुईं।

सन् १९४५ में योरप का संग्राम समाप्त हो चुका था, परन्तु जापान अभी तक युद्ध में डटा था। इसी अंतर में लार्ड वेवल ने जो उस समय भी वायसराय थे, इङ्गलैंड से लौट कर शान्ति और सुलह के लिए घोषणा की। उन्होंने कहा कि हमें 'बीती बातों को भूल कर परस्पर क्षमा करनी चाहिये।' इसके बाद १५ जून का पण्डित नेहरू और कई दूसरे नेता मुक्त किये गये। पण्डित जी के स्वतन्त्र होने पर सब जगह आनन्द-मङ्गलाचार होने लगा। देश-विदेशों से बधाई के हज़ारों तार आये।

सिमला में वायसराय और अन्यान्य नेताओं के मध्य में एक कान्फ्रेंस हुई, परन्तु इस का फल भी पूर्ववत् कुछ न हुआ।

श्री सुभाषचन्द्र बोस जब भारत से गुप्त निकल कर जापान में गये थे तो उन्होंने वहां पर एक 'आज़ाद हिंद' फौज तैयार की थी। युद्ध की समाप्ति पर फौज के उन नायकों के जिन्होंने फौज में बहुत भाग लिया था, विरुद्ध दिल्ली के लाल किले में अभियोग शुरू हुआ। इसके विरुद्ध पंडित जी ने प्रतिवाद किया और उनकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये। श्रीयुत् देसाई-जैसे देश के बड़े बड़े प्रमुख वकील अभियुक्तों की ओर से नियत किये गये। परिणाम यह हुआ। श्री शाहनिवाज़, श्री सहगल और श्री ढिल्लन जो प्रमुख अभियुक्त थे, मुक्त किये गये। इस विजय की जयमाला श्री पंडित जी के ही गले में डाली जानी चाहिए।

इसी अन्तर में ब्रिटिश पार्लियामेंट की ओर से कुछ प्रतिनिधि भारत में आये और उन्होंने यहां के वातावरण में कुछ शान्ति उत्पन्न करने के यत्न किये। उनके सामने भी पंडित जी ने भारत की समस्या का ठीक रूप में रखा। इस प्रतिनिधि-दल ने लौटकर पार्लियामेंट के सामने अपने विचार प्रकट किये। फलस्वरूप ब्रिटिश सचिवसंघ के तीन सदस्य, श्रीक्रिप्स, भारत-सचिव और श्री अलेगज़ैंडर कुछ शर्तें लेकर यहां आये। उन्होंने साढ़े तीन मास के लगभग यहां रहकर यहां की समस्याओं का अध्ययन किया और प्रमुख नेताओं से मिलकर उनमें समझौता करवाना चाहा। इस समय भी कांग्रेस और जिन्ना साहब में कोई समझौता न

हो सका। अन्त में विवश हो उन्होंने अपना निर्णय दिया। उसके एक भाग को कांग्रेस ने स्वीकार न किया, परन्तु विधान-समिति की योजना को स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् श्री जिन्ना ने कैबिनेट-कमीशन की समूची योजना को अस्वीकार कर दिया। इस पर कांग्रेस ने कुछ विचार के बाद कैबिनेट मिशनन की समूची योजना स्वीकार कर ली। इससे कांग्रेस नेताओं का विचार था कि मुस्लिम लीग भी समग्र योजना को स्वीकार कर लेगी जिससे सब मिलकर भारत के भविष्य का निर्णय करेंगे। परन्तु श्री जिन्ना अपने निर्णय पर डटे रहे। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार को कांग्रेस को ही शासन की बागडोर सौंपनी पड़ी। श्री नेहरू जी प्रधान सचिव हुए इन्होंने दो सितम्बर, सन् १९४६ को भारत-शासन को अपने हाथों में ले लिया। भारत के इतिहास में यह दिवस अपूर्व सत्ता रखेगा।

जुलाई, सन् १९४६ को बम्बई में कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी द्वारा निर्धारित प्रस्तावों को स्वीकृत देने के लिये सभा हुई। उस अधिवेशन में मौलाना आज़ाद ने जो छै साल तक कांग्रेस की बागडोर को बड़ी वीरता और दक्षता से संभाले हुए थे, उसे पंडित जी के हाथों में सौंपा। पंडित जी तीसरी बार कांग्रेस के निर्वाचित प्रधान बनें।

जब कभी किसी देश पर संकट आता है तो परमात्मा किसी न किसी महान् व्यक्ति को भेज कर उसकी रक्षा करता है। पंडित जी परमात्मा द्वारा प्रेषित उन व्यक्तियों में से हैं। इन जैसे उच्च आदर्श के नेता संसार भर के महापुरुषों में केवल इने गिने ही होते हैं। ये भारत के ही नहीं, अपितु संसार की दलित जातियों के अगुआ

हैं। चीन इनके मुख की ओर देख रहा है, जावा में इनकी उपस्थिति की आवश्यकता अनुभव हो रही है अमरीका में इनकी यशोदुन्दुभि बज रही है। भारत में तो इनका व्यक्तित्व अद्वितीय है ही। भारत जवाहरलाल है और जवाहरलाल भारत है। इनके ही नहीं, इनके परिवार के लोगों के जीवन का प्रत्येक क्षण भारत की स्वतंत्रता के लिए खर्च हुआ है और हो रहा है। इनके पिता, माता, स्त्री सब के सब भारतीय स्वतन्त्रता की बेदी पर बलिदान हो चुके हैं। जब कभी इन्हें आनन्दभवन में एकांतवास मिलता होगा तो अवश्य इनके कानों में स्वर्गीय पिता की, जिन्होंने इन्हें ऊंचा उठाने में कुछ भी कसर न छोड़ी थी, स्वर्गीय माता की, जिसकी गोद में इन्हें ऐसी उच्च शिक्षा मिली थी, प्यारी पत्नी कमला की, जो स्वयं रुग्ण हो कर भी इन्हें स्वतंत्रता के युद्ध के लिए सदा उत्साहित करती रहीं, आवाज़ें आती होंगी। उस समय उन उच्च व्यक्तियों की बलिदान-गाथाओं को स्मरण कर इनके हृदय में कितना उल्लास होता होगा। किसी ही पुरुष को ऐसे त्यागशील माता-पिता और सह-धर्मिणी मिली होंगी।

इनका अपना जीवन भी स्वतंत्रता-संग्राम में संघर्ष का जीवन रहा है। उठते-बैठते, सोते-जागते इनके अन्दर से एक ही आवाज़—स्वतंत्रता की आवाज़, निकलती रही है। परमात्मा ने इनके अन्तःकरण की आवाज़ को सुना है और इनके जीवन के ध्येय को सफलता प्रदान कर शीघ्र ही स्वतंत्रता-देवी के मन्दिर में प्रवेश करने का दिवस दिखाया है। यही नहीं, यही उस मन्दिर के प्रथम पुजारी नियुक्त हुए हैं।

जवाहरलाल जी के कुछ विचार

१—हमारे सामने बड़े बड़े साम्राज्य गिरे और गिर रहे हैं। दुनियां का भौगोलिक चित्र लगातार बदला चला जा रहा है। परन्तु प्रश्न यह है कि हम भी इस तमाशे में हिस्सा लेने वालो में से हैं या केवल दर्शकों में से ही। दर्शकों की जगह तो अब कहीं नहीं रही और जो बचना चाहते हैं वे कहीं जा भी नहीं सकते।

२—स्वतन्त्रता की लड़ाई को एकता का बल ही जीत सकता है। यदि किसी जाति या देश का एक वर्ग उन्नति के रास्ते पर चल रहा हो और दूसरा वर्ग उसके पांव पीछे की ओर घसीटे तो दोनों ही रह जायेंगे।

३—युद्ध इसी लिए होते हैं कि मुट्ठीभर धनकुबेर समाज की सम्पत्ति पैदा करने वाले समुदाय का आर्थिक शोषण करना चाहते हैं। उसको अपने लाभ से गरज़। वे अपने वर्ग के स्वार्थ को देश के स्वार्थ पर भी तरजीह देने को तैयार हैं, न उनकी कोई मातृभूमि है और पितृभूमि।

४—चीन के अंदरूनी संघर्ष ने उस राष्ट्र को कमज़ोर बना दिया था, लेकिन पिछले साल जब जापान का हमला

हुआ तो हमने देखा कि जो लोग आपस में बुरी तरह लड़ रहे थे और एक दूसरे को मिटा रहे थे, वे ही इतने महान् हो गये कि उन्होंने संकट देखा और उससे लड़ने के लिए तैयार हो गये।

५—अब तो दुनियां संकट की ओर दौड़ रही है। अगर दुनियां की प्रगतिशील ताकतें साथ मिल कर कोशिश करें तो हम अब भी संकट को टाल सकते हैं। इसी में हिन्दुस्तान भी अपना हिस्सा ले सकता है, लेकिन सिर्फ स्वतंत्र हो कर।

६—आज भले ही और सारी चीजें बदल गई हों कि पहचानी भी न जा सकें पर हम सबों को पुरानी लीक पर चलने की, पुराने नारे बुलंद करने की और पुरानी बातों को सोचते रहने की आदत पड़ गई है। कौमें वे जीवित रह सकती हैं जो समय की चाल के साथ चलें।

७—हमें यह समझ लेना चाहिये कि पुरानी दुनियां बीत चुकी है—चाहे हमें पसंद हो या नहीं। जो लोग उसके ज़्यादा प्रतीक रहे हैं उनका कोई अस्तित्व नहीं रहा। वे तो गये गुज़रे काल के भूतमात्र बन कर रह गये हैं।

८—मुझे आशा है कि पूर्व और पश्चिम की अच्छी अच्छी बातें नहीं मिटेंगी। पश्चिम ने जिस विज्ञान का नेतृत्व किया है उसके बिना किसी राष्ट्र का काम नहीं चल सकता। पूर्व ने संसार को जो आध्यात्मिक तत्त्व बताये हैं, उनसे संसार की आत्मा को शांति मिलेगी।

९—सब देशों के जीवन ताने-बाने की तरह एक दूसरे से मिले-जुले हैं। इस लिए जो हलचल राजनैतिक या सामाजिक, किसी एक सुदूर देश में भी उठती है उसका असर सारे संसार पर पड़ता है।

१०—बिना आग में तपे और कुल्हाड़े की सख्त चोटें खाये लोहा इस्पात नहीं बन सकता। जब यह इस्पात बन जाता है तो वह बड़ी सी बड़ी चोटी से भी नहीं टूटता, किसी से भी नहीं झुकाया जा सकता। यही बात कौमों की है।

कुछ क्लिष्ट शब्द (अर्थ-सहित)

शब्द कोष—१

	शब्द	अर्थ
१	अनुशीलन	मनन, विचार
	सकेत	इशारा
	रहस्य	गुप्त भेद
	वातावरण	हवा का रुख़, परिस्थिति
२	बाधा	विघ्न
	बहुलता	अधिकता
	विशिष्ट	विशेष, ख़ास
	धुआंधार	भड़कीला, जोशीला
	सदस्य	सभासद, मेंबर
३	प्रसार	विस्तार
	पेचीला	पेचदार, उलझावदार, कठिन
	सरणी	मार्ग
	अदम्य	प्रबल
४	भावना	विचार
	मनोवांछित	इच्छानुसार
	कुशाग्रबुद्धि	बहुत तेज़ बुद्धिवाला
	दक्षता	चतुराई, योग्यता
५	दुरूह	कठिन
	मुग्ध	मोहित
	विचारपति	जज, न्यायाधिपति
	दमक	झलक,
	पाश्चात्य	पश्चिम का, योरपीय
	भ्रष्ट	पतित
	विडम्बना	उपहास
६	तीव्र	तेज़, अधिक
	अनुकरणीय	नकल करने के योग्य
	तमोराशि	गाढ़ अंधकार
७	सारगर्भित	सारयुक्त, ठोस

सीमित — हद के अन्दर, संकुचित
स्तर — तह, दरजा
निरन्तर — लगातार
कर्तव्यनिष्ठा — कार्यनिश्चय, लगन
८ नियंत्रित — बंधा हुआ, परतंत्र
नितान्त — बिल्कुल
आन्दोलन — उथल पुथल करने का प्रयत्न
९ उत्कट — प्रबल
व्यय — खर्च
विमर्श — विचार
विरत — विमुख
परिषद् — सभा
१० शृङ्खला — जंजीर, जोड़ने वाली वस्तु
पृथक — अलग
समारोह — धूमधाम
११ सर्वाग्रगण्य — सब का अगुआ, उत्तम
प्रगतिशील — शीघ्र चलने वाला, उन्नतिशील

मनचला — मनमौजी, जो चाहे करने वाला
१२ सुव्यवस्था — अच्छा प्रबन्ध
निर्वाचित — चुना हुआ
१३ गौरवान्वित — ऊंचा,, आदरणीय
केन्द्र — प्रधान
शिथिलता — दुर्बलता
१४ देदीप्यमान — चमकता हुआ
स्वर्गत — मृत
निर्दिष्ट — बताया हुआ
समवेदना — हमदर्दी
१५ स्वावलंबन — अपने पर भरोसा
अगाध — अथाह, बहुत
अंकुरित — उत्पन्न
१६ पर्याय — समानार्थक
१७ संघर्ष — होड़, कशमकश
निदर्शन — दृष्टान्त, उदाहरण
१८ समस्या — कठिन प्रसङ्ग
शताब्दी — सदी, सौ बरस
परमुखापेक्षी — दूसरे का मुख देखने वाला, पर-

	तंत्र
२० व्यवहृत	प्रयुक्त, बरता हुआ
सांकेतिक	किसी चिन्ह द्वारा निर्दिष्ट
प्रखरतम	बहुत तेज़
पाठकक्ष	पढ़ाई का कमरा
२१ चिढ़	खिजलाहट, नफरत
२२ देहावसान	मृत्यु
मस्तिष्क	दिमाग़,
तन्मय	लीन
२३ विस्तीर्ण	विस्तृत, विशाल
ध्येय	उद्देश्य
च्युत	पतित, अलग
अकुण्ठित	बिना रोकटोक
अभियोग	मुक़द्दमा
२४ हस्तक्षेप	दखल देना
२५ उन्मुक्त	खुला, निर्बाध
चौकन्ना	चौकस, सजग
२६ सन्नद्ध	तैयार
यथासाध्य	यथाशक्ति
जयन्ती	वर्षगांठ का उत्सव
उग्र	जोशीला
२७ विषम	कठिन
मिथ्या	असत्य
२८ कालिमा	कालिख, दोष
बहिष्कार	परित्याग
बौखलाना	क्रोध से पागल हो जाना
२९ प्रतिरोध	विरोध
३० निधि	कोष, धन
अनुपम	अद्वितीय
विश्वव्यापी	संसार में विस्तृत
आड़ा	कठिन
अपवाद	विरोध
३१ आपत्ति	उज्र, एतराज़
पुष्टि	समर्थन
३२ अनभिज्ञ	अनजान
यातना	कष्ट
३३ उपचार	चिकित्सा, इलाज
अर्चन	पूजा
कुहराम	रोना-पीटना

आर्तनाद

३४ अर्थी शवविमान
शव मुर्दा
स्थगित रोका हुआ
३५ साधना सिद्धि
क्षुद्र नीच
उत्सर्ग त्याग
तांता पंक्ति, कतार
३८ एकसूत्र एकडोरी, एकता
३६ अग्रणी अगुआ, नेता
तत्वदर्शी सत्य का जिसे ज्ञान हो, ब्रह्मज्ञानी
४० अनन्त अन्तरहित, परमात्मा
सिद्धहस्त प्रवीण
सहस्राब्दी हज़ार वर्ष
व्यापना फैलना
४१ रसमाधुरी मधुर रस
भावव्यञ्जकता विचारों का प्रदर्शन
२ व्यक्त प्रकट

वेषभूषा पहरावा
अपवाद बाधक (जहां कोई नियम लागू न हो)
ललित सुंदर
४४ प्रस्तुत उपस्थित, प्रकटित
४५ सौरभवृद्धि सुगंध में वृद्धि
देखरेख निरीक्षण, निगरानी
४७ अवहेलना अनादर
बरगद बड़
रश्मि किरण
४८ पद्धति प्रणाली, रीति
निस्तब्ध निश्चल, निश्चेष्ट
पारंगत पूर्णज्ञाता
४६ नपा-तुला मापा हुआ, परिमित
५० चर्चा ज़िक्र, विचार
उत्तुङ्ग बहुत ऊँचा
५१ कल्लोल क्रीड़ा
स्वच्छन्द स्वतंत्र

५२ उपाधि डिग्री
पेनी तीन पैसों के बराबर एक अंग्रेज़ी सिक्का
५३ आध्यात्मिक आत्मसम्बंधी
५४ गद्गद अतिप्रसन्न
५५ तरल चंचल
स्फूर्ति फुरती
मस्तिष्क दिमाग़
५७ रङ्गमञ्च नाट्यस्थल
अभिनय नाटक का खेल
५८ अतीत भूत
शाश्वत सार्वकालिक, सदा रहने वाला
५९ भूतपूर्व पहले कभी न हुई
६० उपनिवेश दूसरे देश से आकर रहने वालों की बस्ती
६१ सामञ्जस्य अनुकूलता, विरोध न होना
वाह्य बाहरी
परिणत परिवर्तित, बदला हुआ
६३ विधान व्यवस्था, योजना
६४ आदान-प्रदान आदान प्रदान, परिवर्तन
संकीर्णता तङ्गदिली
आकर खान
प्रतीक प्रतिनिधि
६६ धरोहर अमानत
मत्सर डाह
६८ नीरव मौन
६९ प्लावित आर्द्रित, भीगा हुआ
जनश्रुति किंवदन्ती, अफवाह
७० लावण्य सौंदर्य
७१ अनुपम अद्वितीय
पैनी तेज़
महादुधर्ष अतिप्रबल
७२ आस्था श्रद्धा
७३ अनाहार बिना भोजन किये
अनुसरण अनुगमन
अमनुति अनुज्ञा, इजाज़त

७४ वृत्ति — व्यवसाय, काम
७५ अतिगर्ह्य — अतिनिंदनीय
संपर्क — स्पर्श
निषिद्ध — वर्जित
आघात — चोट
७६ वास्तविक — असली
अभियोग — मुकदमा, नालिश
७७ व्यवसाय — कारोबार
हस्तक्षेप — दखल देना
८८ आजन्म — जन्म से लेकर
आस्तिकता — ईश्वरविश्वास
८९ दौरदौरा — चक्र, चलन
८० पर्याप्त — काफ़ी
चक्र — दौर
८२ प्रतिष्ठा — मान, आदर
आत्मसंयम — इच्छाओं को वश में करना
८३ ब्राह्ममुहूर्त — सूर्योदय से पहले का समय
८४ जिमाना — खिलाना
नैत्यिक — रोज़ाना

८६ लांछित — दूषित
८७ अवधि — अन्तिम तिथि
सांप्रदायिक — किसी मत से सम्बन्ध रखने वाला
८९ सवर्ण — उच्च वर्ण का
९० सारगर्भित — ठोस
९१ आकस्मिक — अचानक
९२ कटिबद्ध — कमर बांधे, तैयार
९३ दिग्दर्शन-मात्र — केवल नमूना, संक्षेपमात्र
श्रद्धालु — श्रद्धायुक्त
ओतप्रोत — व्याप्त
अमोघ — अचूक
९४ मुट्ठीभर — थोड़े से
साम्मुख्य — सामना, मुकाबला
पाशविक — पशुतायुक्त
९५ उऋण — ऋणविमुक्त
षड्यन्त्र — कपट चाल
९६ आमरण — मरण तक
मंथन करना — क्षुब्ध करना

९७ अनिवार्य जो रुक न सके, अवश्यंभावी

९८ मितव्ययी थोड़ा खर्च करने वाला

१०० आभ चमक

चरम अन्तिम

निदान रोग का कारण

यक्ष्मा क्षय रोग, तपेदिक

१०१ सात्विक सतोगुणी, शुभ कर्मों की ओर ले जाने वाली

अवलम्बन ग्रहण करना, धारण करना

आर्ष ऋषिसम्बन्धी, ऋषियों के

पूर्व पुरखा पूर्वज, पहले उत्पन्न हुआ

अभीष्ट इच्छित

१०२ सम्पादन पूर्ण करना

अवतीर्ण उतरना, अवतार लेना

गगनभेदी आकाश तक पहुँचने वाला

विसर्जन त्यागना

कुत्सित घृणित, निन्दनीय

आकस्मिक अचानक हुई

१०३ निर्माता बनाने वाला

म्लान मुख उदास मुख वाले

भस्मावशेष (देह जलने के बाद) बची हुई राख

क्षमता सामर्थ्य

अवसान अन्त, मृत्यु

१०४ भस्मान्तं शरीरम् शरीर का अन्त भस्म है (शरीर जल जाने के बाद भस्म ही केवल शेष रह जाता है।)

विषाद खेद, रंज

समवेदना सहानुभूति, हमदर्दी

क्षति हानि, कमी

विध्वंस नाश

व्यग्र जुटे हुए, लग्न

शाश्वत चिरस्थायी

१०५ उपयुक्त उनके योग्य

अस्थिचय अर्थ (हड्डियों की-
राशि)
अनुरोध आग्रह
तत्व सिद्धान्त
उद्धार सुधार, उन्नति
१०७ देखभाल निरीक्षण
१०६ सोहवत संगत
१११ नामधाम नाम और पता
११२ मरणासन्न जल्दी मरने वाला
परावार सीमा
११३ पराभव निरादर
तृणवत् तिनके की तरह,
तुच्छ
११५ निरीश्वरी ईश्वर-विश्वासरहित
११८ विष्ठा मल
आध्यात्मिक आत्मसम्बन्धी
११९ कारा जेल
१२० अपमानित तिरस्कृत,
बेइज्जत
१२१ पटना बनना, मन मिलना
आंतरिक अन्दर की
दावाग्नि जङ्गल की आग

निन्द्य निंदनीय
१२२ पदार्पण पांव धरना, प्रवेश
१२४ पक्षपाती तरफदार
ध्रुव एक नक्षत्र जो
अटल रहता है
कर्णधार खेवट, नेता
१२५ मंच स्टेज
१२७ वैमनस्य द्वेष, दुश्मनी
माध्यम साधन
१२८ नियंत्रित निरुद्ध
१३० अविस्मर-
णीय जो न भूल सके
समूचा सारा
किंकर्तव्य-
विमूढ जिसे यह न सूझे
क्या करना चाहिए
आयत कुरान का वाक्य
१३१ स्थानापन्न किसी के स्थान पर
नियुक्त, कायम मुकाम
१३२ निर्मूल असत्य
आशातीत आशा से बढ़कर
१३३ रुष्ट क्रुद्ध

आक्रान्त जिस पर आक्रमण (हमला) हुआ हो
सचेतन जीवित, वास्तविक
१३४ विनिमय परिवर्तन
प्रतिनिधि किसी की जगह काम करने वाला
१३५ कोटि श्रेणी, दरजा
नंगा फकीर माहात्मा गांधी (भूतपूर्व ब्रिटिश-प्रधान-सचिव चर्चिल ने महात्मा जी की ओर इस नाम से संकेत किया था।)
१३६ स्मारक स्मरण कराने वाला, यादगार
जीर्ण-शीर्ण अतिदुर्बल
१४० सुषमा सुन्दरता
१४१ प्रजातन्त्र प्रजा के अधीन
परिधि सीमा
विषम कठिन
१४२ षड्रस छै प्रकार के स्वादों वाला

रत्नप्रसू रत्न उत्पन्न करने वाली
१४४ पदक तमग़ा
१४७ अपार बेहद
१४८ छात्रावस छात्रों का निवास-स्थान
१५१ बवंडर बगूला, चक्रवात
१५२ धुआंधार जोशीला, भड़कीला
१५४ सन्न स्तब्ध
१५७ प्रतिबन्ध रुकावट
१५८ दयार्द्र दया से पसीजा हुआ
१५६ उल्लेखनीय लिखने योग्य
१६१ चोटी के बहुत ऊंचे, बड़े
निर्भर आश्रित
१६२ अवहेलना अवज्ञा
१६३ प्रकृति स्वभाव
द्रुतगति तेज़ चाल
सिंहाव-लोकन पड़ताल, पिछ-ली बातों पर विचार (सिंह

आगे आगे भा-
गता पीछे देख-
ता जाता है।)

१६४ अड़चन बाधा
१६५ आन्तरिक अंदर का
१६७ प्रतीक्षा इंतजार
१६६ उल्लास हर्ष
अवसान मृत्यु
१७५ प्रयाण यात्रा, प्रस्थान
१७६ चलती चक्की तीव्र गति

कूप-मण्डूक कुएँ का मेंढक
(संकुचित विचार
वाला)

१७७ घनिष्टता गहरी मित्रता
१८० विधान- नियम बनाने वाली
समिति सभा
१८३ धनकुबेर कुबेर-समान
धनाढ्य
आर्थिक धनसंबन्धी
शोषण निचोड़ना



पुस्तक में प्रयुक्त कुछ मुहावरेदार शब्द

पृष्ठ सं०		
१	तलवार की तेज़ धार पर चलना	किसी विपत्तिप्रद काम में हाथ डालना।
२	कंधों पर रखना--	किसी को कोई ज़िम्मेदारी का काम देना।
	राग अलापना—	किसी की बात को दुहराते जाना।
८	माथा झुकाना—	अधीनता स्वीकार करना।
१०	धाक जमना—	रोब जमाना, दबदबा होना।
१२	साथ देना--	साथ होकर चलना, साथ काम करना।
१३	—ज्वाला धधकना—	जोश आना।
१४	घड़ियां गिनना—	अन्तिम समय की बाट जोहना।
	बुझे हुए दिल—	उदासीनता।
१७	खेत आना—	मरना।
२३	बागडोर हाथ में देना—	अधिकार सौंपना।
	चल निकलना—	सफलता पाना।
२६	न दिन देखना न रात—	लगातार काम करते रहना।
	हथेली पर जान लेना—	प्राणों का मोह छोड़कर काम करना।
३२	टक्कर लेना—	मुकाबला करना।
	कलम को आराम न देना--	लिखते रहना।
३७	हाथ धोना—	त्याग करना।
३८	एक सूत्र में बाँधना—	एकता में लाना।
४७	दृष्टि से गुज़रना—	दिखाई देना।

४८ आकाश पाताल का अन्तर- बहुत भेद।
५१ फूट निकलना-- उत्पन्न होना।
५४ गहरी चोट लगना— अधिक प्रभावित होना।
६१ आश्रम में परिणत होना- आश्रम का रूप धारण करना।
६६ नेत्रों से नेत्र मिलाना — किसी की ओर देखना।
७४ दंग रहना— हैरान होना।
तन बदन में आग लगना— शरीर क्रोध से जल उठना।
७४ उथल पुथल करना— उलट पुलट करना।
८१ माथा नवाना- झुकना, स्वीकार करना।
अंगूठा दिखाना— इनकार करना।
८३ टकटकी बांधना- नज़र भर कर देखना।
८६ स्वप्नभंग होना— असली स्थिति का पता लगना।
६५ बीज रोपना— आरंभ होना।
६८ सेहरा पहनाना- प्रशंसा का पात्र ठहराना।
१०२ बाट जोहना- इंतज़ार करना।
१०४ आंखें किसी की ओर लगना- उत्सुकता से ताकना।
आशाओं पर पानी फिरना- निराश होना
१०६ घात में रहना— अनुकूल अवसर ढूंढना।
११० रट लगाना- बार बार कहना।
११२ आव देखा न ताव-- इधर उधर की न सोचना, शीघ्र ही।
१२१ लोहा मानना— प्रभुत्व स्वीकार करना, दबाव तले आना

१२२ सिक्का जमना—	प्रभुत्व होना, आतंक जमना।
कंधे से कंधा लड़ाना–	एक साथ चलना, मिल जुल कर काम करना।
कदम बढ़ाना	आगे बढ़ना, आरम्भ करना।
१२४ बोझ कंधों पर आ पड़ना—	जिम्मावारी उठाना।
रंग बढ़ना—	असर होगा।
१२८ जीवन और मृत्यु के मध्य--	मरणासन्न।
१२६ बीज बोना—	कारण उत्पन्न करना
१३१ जीवन फूंकना—	जान डालना जोश पैदा करना।
१३६ टक्कर लेना—	मुकाबला करना।
१४१ कांटों की शय्या—	अति कष्टमय जीवन।
१४२ समय फिरना—	अच्छे दिन लौटना।
१५० रोंगटे खड़े होना—	जी दहलना।
१५१ रङ्ग में रङ्गा जाना—	उसी तरह का बन जाना।
जी ऊबना—	दिल उकता जाना।
१६० बागडोर पकड़ना—	कार्य संभालना।
१६४ हृदय फिसलना—	दिल उधर झुकना
१६६ चरण-चिह्नों पर चलना—	पीछे पीछे चलना।
१७५ कुछ न चली—	किसी ने कहा न माना।
१८१ हाथों में लेना—	अधिकृत करना

शब्दकोश २

कुछ चुने हुए शब्द (अर्थरहित)

१ परिस्थिति
राजविद्रोह
आलोचना
रुचि

२ जन्मसिद्ध
प्रयास
आर्धमासिक
सन्मुख
दल
मंच
प्रेषित

३ जागृति
अस्पृश्यता
भारभूत
साहस
जातिच्युत

४ विधाता
उत्पादक
ख्याति
छत्रच्छाया
शिक्षादीक्षा
वञ्चित
प्रशंसनीय

५ प्रतिभाशाली
प्रवृत्ति
पारितोषिक
छात्रवृत्ति
आकर्षित

६ परिचय
सहकारी
नियुक्त
लगन
अन्तर
आच्छादित

७ धीरता
श्लाघा
निरन्तर
पक्षपाती
कर्मनिष्ठ

८ आग्रह
विस्मित
व्योमविहारी
अनभिज्ञ

९ प्रथा
सदनुष्टान
उदाराशय
सहमत
सहयोग
गवेषणापूर्ण

१० निजी
उत्तेजित
समर्थन
सार्वजनिक

११ खटकना
आर्थिक
आन्तरिक

१२ आंदोलन

सम्मिलित
१३ अधिवेशन
१४ निर्दिष्ट
पथप्रदर्शन
भावना
१२ घृणा
दृढ़तर
१६ व्यक्ति
आदर्श
१७ अधिकार
१८ दुर्भाग्ययातना
१६ सजग
अटल
दृढ़व्रत
२० अवतीर्ण
अध्यापक
कंठस्थ
२१ पुरस्कार
सुधबुध
स्वास्थ्य
२२ सार्वजनिक
निर्भीक
निष्पक्ष
२३ अनुज्ञा
२४ सम्पादन

स्वाध्याय
२५ सञ्चालक
निरीक्षण
२६ दुर्भिक्ष
स्नेहभाजन
सारगर्भित
२७ चेष्टा
२८ क्रियात्मक
भीषण
धर पकड़
२६ तर्कधारा
निर्वासित
३० अवधि
साम्राज्य
सर्वसम्मत
परिणाम
३१ अभिप्राय
३२ संघर्ष
कर्ता-धर्ता
३३ उपासक

परम धाम
३४ मार्गप्रदर्शक
सांसारिक
३५ संमिश्रण

निर्दिष्ट
निष्काम
ध्येय
३६ स्वावलम्बी
संग्राम
३८ एक सूत्र
३६ हीन-दीन
दिव्य
भव्य
कीर्तिपताका
तत्व
४० आवरण
सर्वतोमुखी
गल्प
फुटकर
निर्बाध
हृदयतलस्पर्शी
विधाता
अर्वाचीन
शृङ्खला
जीवनतत्व
ग्रन्थी
विख्यात
४१ हलचल

रसास्वाद
आनन्दामृत
अध्ययन
चित्ताकर्ष
मुखाकृति
४२ सम्पर्क
प्रभावित
अक्षय सुख
४३ बहुगुणसम्पन्न
४४ तत्परता
एकान्तवास
वनस्थली
४५ समवयस्क
४६ प्राकृतिक
प्रगाढ
सहचर
वाटिका
चमचमाता
कल्पना
४७ सिद्धान्त
प्रखर
४८ अन्तर
दूषित
आचारभ्रष्ट
४९ कटु

व्यायाम
सर्वाङ्गपूर्ण
५० आयोजन
५१ अङ्कित
५२ आजीविका
रङ्गढङ्ग
५४ कृति
५५ रमणीयता
५६ निवृत्त
५७ चमत्कार
५८ प्रणेता
उपयुक्त
वशीकरण
६० अभिनन्दनपत्र
उपनिवेश
साहित्यिक
युगानुकूल
६१ उत्तीर्ण
सप्तच्छद
६३ विचित्रता
६४ उत्तीर्ण
अगाध
अनुकरण
निदर्शन
६५ विचलित
६६ दग्ध

मानवता
कुञ्जिका
सदन
६७ प्रस्थान
६९ प्रभातकालीन
शरद
७० किशोर अवस्था
७१ कुण्ठित
७२ सम्पत्ति
धर्मनिष्ठ
महिला
७३ मेघाच्छन्न
परामर्श
सहमत
७४ देहावसान
चरणचुम्बन
प्रतिनिधित्व
७५ गणना
आश्वासन
७६ आर्थिक
उपद्रव
असभ्य
७७ व्यवसाय
परिश्रमसाध्य

७७ दैनिक
वैयक्तिक
सत्र
७९ क्षत विक्षत
वीरोचित
८० वीर
क्षमता
मात्रा
८१ परिणत
८२ धारणा
उदय
८३ अन्यान्य
अतिरिक्त
८४ अनावृष्टि
स्थगित
८५ घोषित
साहस
८६ उपाधि
उत्पादक
आवेश
८७ सांप्रदायिक
आय
८८ हताशता
बहिष्कार

प्रदर्शन
सविनय
८९ उद्धार
निमित्त
अनुयायी
सूत्रपात
९० महासमर
सत्ता
विवश
९१ रोष
९२ अनुदार
प्रणबद्ध
विधानयोजना
९३ गर्जन
त्राहि-त्राहि
व्यस्त
९४ उज्ज्वल
प्रमाण
हिंसक
असंख्य
९५ अस्पृश्यता
कलङ्क
सीमा
कुपरिणाम

९७ दूरद ....
धनाढ्य
९८ निष्काम
कुबेर
स्रोत
१०० केन्द्र
युद्धानल
विस्मृति
आक्रमण
१०१ मं
अवतीर्ण
अतिदयनीय
सामाजिक
१०४ शौच
१०५ व्यसन
१०६ समस्या
१०७ चिकित्सा
१०८ सार
१०९ अपेक्षा
छटपटाना
११० उद्दिष्ट
१११ जिह्वा
चपलता
संयममय

११२ मूलमन्त्र
११३ लङ्गर
११४ समृद्धि
११५ छत्रच्छाया
यातना
११६ असंख्य
कर्तव्यपथ
११७ प्रवीणता
गर्व
११८ दृष्टिपात
१२० देहान्त
पदचिह्न
अन्तर्गत
१२१ निबन्ध
बाहज़
१२२ दिलचस्पी
१२३ ईर्ष्या
खटका
१२४ व्यग्रता
बहिष्कृत
१२५ अध्यक्ष
१२६ इच्छुक
१२८ सदस्य

१३० सचिवमंडल
तर्काभितज्ञा
कर्ता-धर्ता
१३१ पल्ला
सम्पत्ति
१३२ ईश्वरनिर्दिष्ट
सार्वजनिक
१३४ विकल्प
१३५ कुम्भकर्णी नींद
१३६ आदित्य
सन्निविष्ट
१३७ निस्संशय
हतोत्साहता
यशस्विता
१३८ निदर्शन
एकमात्र
समूचा
आमन्त्रण
१३९ हस्तगत
गणितज्ञ
सत्कृत
१४१ आमोद-प्रमोद
१४२ अगाध

कौतुकवश
१४३ कट्टरता
१४५ उल्लेखनीय
१४७ बाढ़
१४८ प्रतिभा
१५० हिमाच्छादित
१५१ अलंघ्य
१५४ अन्तर्ज्वाला
करुणा
अंगोछा
१५७ अभियोग
१६० फिसल खड़ाऊ
१६२ तिलमिलाना
१६३ सहमत
१६५ अवधि
१६६ अन्तर
१७० अपार
१७३ दबाव
१७५ फलतः
प्रमुख
१७७ यशोदुन्दुभि

प्रश्न-धारा १

दादाभाई नौरोजी

१—आजकल के राजनैतिक वातावरण की श्री दादाभाइ जी के समय के राजनैतिक वातावरण से तुलना करो और यह बताओ कि दोनों समयों में से किसमें राजनैतिक काम करना कठिनतर था ?

२—नौरोजी के कुछ राजनैतिक और सामाजिक कामों का वर्णन करो। इन्होंने पार्लियामेंट के सदस्य होते हुए भारतीय हित के कौन कौन से काम किये थे ?

३—दादाभाई नौरोजी के राजनैतिक विचार किस कोटि के थे ? एक दो उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करो।

४—ये कितनी बार और कहां कहां के कांग्रेस-अधिवेशनों के सभापति हुए ?

५—नौरोजी के एक दो विचारों को बताओ जो आप को अधिक पसंद आये हों ?

बाल गंगाधर तिलक

१—तिलक जी की कुछ जीवन-घटनाओं से यह सिद्ध करो कि वे स्वावलम्बी और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति थे।

२—'तिलक जी की शिक्षा विषम परिस्थितियों में हुई थी'—इस की पुष्टि करो।

३—तिलक जी को केसरी और मराठा के चलाने में किन किन

बाधाओं का सामना करना पड़ा था ?

४—शिक्षा के प्रसार में तिलक जी ने क्या कुछ किया है ?

५—सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में लोकमान्य जी के कैसे विचार थे ?

६—'तिलक जी प्राच्यविद्याविशारदों में उच्च कोटि के विद्वान् थे।' इसे युक्ति और उनके रचे हुए ग्रन्थों के नाम बताकर सिद्ध करो।

७—तिलक जी ने अपने जीवनकाल में राजनैतिक क्षेत्र में जो जो कार्य किये थे उनका दिग्दर्शन करो।

८—लोकमान्य के राजनैतिक विचार कैसे थे ? इन्हें कई बार जेल में क्यों जाना पड़ा था ?

९—इन्हें विलायत में क्यों जाना पड़ा था ? वहां पर इन्होंने भारतीय हित के कौन कौन से काम किये थे ?

१०—इनकी मृत्यु का कारण क्या था ? इनकी मृत्यु के दृश्य का वर्णन करो।

११—'ध्येय-सफलता के लिये सब से पहले स्वावलंबी, फिर दृढ़निश्चयी और अन्त में आत्मत्यागी होना चाहिए।' इस उद्धरण की पुष्टि लोकमान्य तिलक जी के जीवन से करो।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१—'रवीन्द्र जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी।' इस धारणा को

युक्तिद्वारा सिद्ध करो ।

२—रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' के एक दो उद्धरण दो

३—'रवीन्द्र बाबू के वंश पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा थी ।' इसे सिद्ध करो ।

४—महर्षि देवेन्द्रनाथ के जीवन की एक-दो घटनाओं का वर्णन करो ।

५—रवीन्द्रनाथ के बचपन की कुछ घटनायें बताओ । इनके बचपन की किन किन घटनाओं का इनके भावी कवि-जीवन पर अधिक प्रभाव पड़ा है ?

६—शान्तिनिकेतन, विश्वभारती, भारती, बोलपुर-इन पर छोटी छोटी टिप्पणियां लिखो ।

७—ठाकुर रवीन्द्रनाथ को किन देशों का भ्रमण करना पड़ा था ? विलायती लोगों के जीवन के सम्बन्ध में इनके कैसे विचार थे ?

८—ठाकुर रवीन्द्रनाथ की 'साहित्य-सेवा' पर एक पंद्रह-बीस पंक्तियों का लेख लिखो ।

९—नोबल पुरस्कार क्या होता है ? रवीन्द्र को वह कैसे प्राप्त हुआ ?

१०—इनके राजनैतिक विचार कैसे थे ? आपने 'सर' की उपाधि क्यों छोड़ी थी ?

महात्मा गांधी

१—महात्मा गांधी जी के बचपन और शिक्षा पर कुछ लिखो ।

२—आपकी माता जी की कन किन धारणाओं का आपके जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा है ?

३—दक्षिणी अफ्रीका में गांधी जी को किस समस्या का सामना करना पड़ा था ? वहां पर इन्होंने क्या क्या कार्य किये हैं ?

४—'सत्याग्रह, अहिंसा, असहयोग-इनके द्वारा गांधी जी को बहुत सी सफलता मिली है।' इस बात को सिद्ध करो।

५—भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में गांधी जी को कब और क्यों प्रविष्ट होना पड़ा था ?

६—'सत्याग्रह-आश्रम' में आपका जीवनक्रम कैसा था ?

७—चंपारण-समस्या, खिलाफत-आंदोलन, खादी-प्रचार, हरिजन-समस्या, साइमन-कमिशन—इन पर टिप्पणियां लिखो।

८—आपने अनाहार-व्रत किस किस समय किय था ? उनका क्या क्या प्रभाव पड़ा था ?

९—रामगढ़-कांग्रेस के अधिवेशन में आपने क्यों भारत-नेतृत्व ग्रहण किया था ?

१०—१९४२ में कांग्रेस ने क्या निर्णय किया था ? इसका फल क्या हुआ था ?

११ पार्लिमेंट-अमात्य-मंडल के कौन कौन सदस्य भारत में आये थे ? उनके आने से कुछ लाभ हुआ कि नहीं ? इस पर अपने विचार प्रकट करो।

१२—गांधी जी और भारत-इस पर एक छोटा सा निबन्ध लिखो।

१३–गांधी जी के जीवन की कुछ रोचक घटनाओं का वर्णन करो।

१४–हिन्दी के विषय में महात्मा जी के क्या विचार थे?

१५–गांधी जी के विचारों में से जो आपको पसंद आये हैं, उन्हें लिखें।

मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद'

१—'मौलाना के पूर्वज अतिविख्यात और धार्मिक जीवन व्यतीत करनेवाले महापुरुष थे।' इस पर अपने विचार प्रकट करो।

२—मौलाना 'आज़ाद' की शिक्षा पर एक नोट लिखो।

३—लिसानस सिद्क, अलहज़र, अलहलाल, जमीयत उल-उल्मा- इन पर टिप्पणियां लिखो।

४—राजनैतिक क्षेत्र में आपने कब प्रवेश किया था? आप सर सय्यद के विचारों के क्यों प्रतिकूल थे?

५—खिलाफत-आन्दोलन का कारण क्या था? मौलाना ने उसमें क्या भाग लिया था?

६—भारतीय सरकार की ओर से आप को क्या कष्ट मिले हैं?

७—आपने कांग्रेस में भाग लेकर मुसलमानों का हित किया है अथवा अहित? इस पर अपने विचार प्रकट करो।

८—आप कितनी बार कांग्रेस के प्रधान बने? आपकी प्रधानता की कुछ विशेष घटनाओं का वर्णन करो।

९—१९४२ में बंबई के कांग्रेस-अधिवेशन के पश्चात् कौन कौनसी राजनैतिक घटनायें हुईं?

१०–'मौलाना को जहां प्रतापी सरकार से टक्कर लेनी पड़ती थी

वहां अपने सजातीयों के विरोध का भी मुकाबला करना पड़ता था।' इस पर कुछ लिखो।

२१–'मौलाना एक पक्के मुसलमान होते हुए भी पूरे देशभक्त हैं।' इस विचार को पुष्ट करो।

१२–आप अपने सजीतीय मुसलमानों को क्या उपदेश देते रहते हैं?

१३–भारतीय-विधान-समिति और अस्थायी मंडल के बनने में मौलाना का क्या हाथ है?

जवाहर लाल नेहरू

१—जवाहरलाल नेहरू का संक्षिप्त जीवनचरित लिखो।

२—नेहरू परिवार के आत्मत्याग और बलिदान पर एक लेख लिखो

—जवाहिरलाल ने किसानों के उद्धार के लिये जो काम किये हैं उनका वर्णन करो।

४—श्री मोतीलाल जी, कमला नेहरू, पं० नन्दलाल जी, मुंशी मुबारिक—इन पर टिप्पणियां लिखो।

५—जवाहरलाल के जीवन पर किन किन का प्रभाव पड़ा है?

६—इनके बचपन और शिक्षा के विषय में कुछ लिखो।

७—जवाहरलाल जी कितनी बार कांग्रेस के प्रधान बने हैं? इनके प्रधान-काल की कुछ विशेष बातों का वर्णन करो?

८—इनके जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन करो।

९—इन्होंने किन किन देशों की यात्रा की है और वहां पर क्या क्या राजनैतिक काम किये हैं ?

१०—इनकी अमरनाथ-यात्रा-सम्बन्धी घटना का वर्णन करो।

प्रश्न-धारा २

१—इनके अर्थ बताओ—

जन्मसिद्ध अधिकार, धुआंधार व्याख्यान, रहस्यमय विषय, अदम्य साहस, कुशाग्रबुद्धि, दुरूह विषय, विधि-विडम्बना, अनुकरणीय, शीलता, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति, नितान्त अनभिज्ञ, सदनुष्ठानसे विरत, गवेषणा-पूर्ण निबन्ध, अपूर्व समारोह, व्यक्ति।

२—इनकी व्याख्या करो।

हमारे पूज्य नेता......की जाय कम है (पृष्ट ३-४)। जिस समय देश अविद्यारूपी......की जाय थोड़ी है। (पृष्ट ६-७)। वहां प्रत्येक व्यक्ति......न सामाजिक। (पृष्ट ८)। "एक हो जाओ......प्राप्त था। (पृष्ट १२-१३)। १-६ स्वावलंबन... अधिकार नहीं। (पृष्ठ १६)। ४-उन्नति के मार्ग में...... मुड़ने पाये। (पृष्ठ-६)। ७-सदाचारण........नहीं होता (पृष्ठ १७) १२-संसार के........कर धर न सके। (पृष्ठ १७)।

३—इनका वाक्यों में प्रयोग करो।

प्रखरतम, पुरस्कार, आकर्षित, जातिच्युत, मनमानी, हस्तक्षेप, दिन देखा न रात, मिथ्या, बौखला उठे, धर पकड़,

आड़े समय में, संघर्ष, कर्ता-धर्ता, परम धाम, निष्काम।

४—इनका अर्थ अपनी भाषा में प्रकट करो—

भारत........शोचनीय जो हो गई थी। (पृष्ठ ३७)। तिलक जी उस झुकने वाली लकड़ी के न बने थे। लोक मान्य कट्टर........ न चाहते थे। (पृष्ठ २४)। इससे इनके चरित्र........आदरणीय हो गये। (पृष्ठ २८)। एक दिन भी........न जाना पड़े। (पृष्ठ ३२-३३)। वे कहा करते थे........जीवन का सार है। (पृष्ठ ३५)। जीवन में........सम्राट् हैं। (पृष्ठ ३५)। ३—ध्येयसफलता........होना चाहिए। (पृष्ठ ३६)। मूल्यवान.... मूल्यवान नहीं। (पृष्ठ ३७)।

५—इनके अर्थ बताओ—

दीन-हीन, हृदयतलस्पर्शी, आनन्दामृतप्रवाह, भावव्यञ्जकता, शान्त मुखाकृत, ललित कला, बहुगुणसम्पन्ना, अनुपस्थिति, मूर्तिमान उदाहरण, पश्चिम की लालिमा, दृष्टि से गुज़रना, प्रदर्शन, विहरण करना, चिरस्मरणीय, हृदय लहलहा उठा, सार्वदेशीय, प्रबन्धप्रणाली, अलोकस्तम्भ, तत्परतापूर्वक।

६—इनके अर्थ अपनी भाषा में बताओ—

ऐसे ही कुछ........उठाये हुए हैं। (पृ० ३६)। ऐसे देश में.... जोड़ दिया है। (पृ० ४०)। रवीन्द्र में इतनी........शान्ति का आगार हो। (पृ० ४२)। यह कहावत है........अपवाद था। (पृ० ४२)। आपका जीवन....निमुक्त थे। (पृ० ४५)। "मुझे स्मरण........सामने खोलती। (पृ० ४६)। सूर्य की

नवीन·······इसमें क्या है । (पृ० ४६) । परन्तु आपने········सहन किया । (पृ० ५५) । मैं चाहता हूं········विदा करूं । (पृ० ५६) । जहां आप की········रहने दिया है । (पृ० ५७) । अतीत और········शाश्वत तथ्य है । (पृ० ५८) । इन दिनों पूजा········एक हो सकेंगी । (पृ० ६१) । जहां किसी········जागृत हो । (पृ० ६४) । तुम्हारी माला में········न निकल जाय । (पृ० ६७) । रात दिन·······जकड़ लिया है । (पृ० ६८) । एक जनश्रुति········छू गई । (पृ० ६६) ।

७—इनके प्रयोग से वाक्य बनाओ—

जाति के, आस्था, जीवनयात्रा, तन-बदन में आग, मान-हानि, आड़ लेकर, सफलता पर सफलता, कैसे सह्य, अपने ही हाथों से, शानदार, जिमा कर, पानी पड़ गया, स्वप्नभंग, सद्‌भाव रख कर, कुंठित हो गया, अनिवार्य, सेहरा पहनाना, विस्मृति के गर्भ में ।

८—इनकी व्याख्या करो—

जिस अनुपम········पुकारते हैं । (पृ० ७१) । अपने अद्वितीयाधिकार····यही आधार है । (पृ० ७७) । आप पर····शिक्षा ली थी । (पृ० ७८) । उनकी आवाज़····बौखला उठे । (पृ० ८१) । यहीं पर····कुंदन हो गया । (पृ० ८३) । साथ ही इस प्रश्न का····सत्ता होगी । (पृ० ६०) । लोगों पर यह····दुर्घटनायें कीं । (पृ० ६१) । दक्षिणी अफ्रीका········किस की हुई । (पृ० ६४) । उस शक्ति········घोषणा कर रहे हैं ।

(पृ० ६४) । उस समय···अंकुरित होते रहे । (पृ० ६६) गांधी जी परस्परविरोधी···करते पाया गया है । बीच बीच में···विलीन हो गये । (पृ० १००) । आत्मा का ज्ञान···दुःख न देंगे । (पृ० १०६) । एक ही स्थान पर···हर्ज क्या है । (पृ० ११०) । खाने और बोलने के···वश में कर लिया । (पृ० १११) । शिक्षा को···क्यों लादा जाय ! (पृ० ११२) । हम लोगों ने··हमें बहा रही है । (पृ० ११३) । आध्यात्मिक दृष्टि से···देख पड़ेगी । (पृ० ११४) ।

६—इन में रिक्त स्थानों को भरो—

१—मौलाना साहिब···इनेगिने···में से हैं, जिनके जीवन की··· प्रत्येक···देशसेवा और परोपकार के लिये···है । २—जिस का···सारे देश में···माना···सके । ३—इनकी बुद्धि···थी, अतः—पंद्रह···की अवस्था में ही धार्मिक···को समाप्त··· लिया था । ४—उनकी···आदि अंग्रेज़ी शिक्षा के······ मनुष्यता नहीं···सकती और मुसलमान···· तक उन्नति नहीं कर···जब के अंग्रेज़ी···का···अध्ययन करते । ५—हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो···ज़ोर से···रही थी वह भी···गई ।

१—इनके अर्थ अपनी भाषा में लिखो—

जब आप के···भोग रहा है । (पृ० ११७) । व्यापारी अंग्रेज़ों ने···लाभ उठाया । (पृ० ११७) । इन के भाग्य में···लिखा था । (पृ० १२०) । इससे गांधी जी के···आघात लगा । (पृ० १२६) । इन सब अवसरों पर···बढ़ गया है । (पृ०१३०) ।

परन्तु धन वैभव...इन्हें प्राप्त है। (पृ० १३१)। इस में कोई सन्देह....नेता क्या करेंगे। (पृ० १३५)।

११—इनकी व्याख्या करो—

जवाहरलाल का....शक्ति है। (पृ० १३६) । परन्तु एक पग भी....की हेतु। (पृष्ठ १३७) । क्या कहीं आपको....स्वीकार किया हो। (पृ० १३८)। इन सब बातों का....स्वीकार न किया। (पृ० १४५) । उस निरपराध...घृणा हो गई। (पृ० १४७)। जो बवंडर...रूप ले लिया। (पृ० १४७)। इन्होंने इस...उतर हुये थे। (पृ० १४८)। खादी पहनने.... आवश्यकतायें थीं। (पृ० १५७) । संसार की....अग्रसर नेता थे।। (पृ० १५६)। लोग फिसल........दौड़ने फिरने लगे। यह कांग्रेस के........चले आ रहे हैं। (पृ० १६२)। इनकी इस्पाती........पिघल सकती थी। (पृ० १६८)। उस समय........खटकता था। (पृ० १७४) । चीन इनके.... अद्वितीय है। (पृ० १७७)। जब कभी........उल्लास होता होगा। (पृ० १७८)। युद्ध इस लिये........करना चाहते हैं। (पृ० १७६) । हमें यह समझ लेना........रह गये हैं। (पृ० १८०-८१) । बिना आग में........झुकाया जा सकता (पृ० १८१)।

१२-इनके अर्थ बता कर वाक्यों में प्रयोग करो—

परिधि, मनुष्यप्राप्य, हस्तगत, भार उठाया, चमक उठी,

जोड़ का, रुचि, एकमात्र, उमंगें, अधिकाधिक, एड़ी-चोटी का, दयार्द्र ।

प्रश्न-धारा ३

१—सुफल —कु, दुस्, निस्, वि ।

प्रकार —वि, सम्, अप, आ, दुस्, अधि ।

अनुभव —प्र, सम्, वि, परा, दुर् ।

दुराचार—प्र, वि, सु, दुष् ।

विनय —प्र, अनु, उद्, अप, निर् ।

अनुसार—प्र, सम्, अप, निस् ।

निश्चय —नि, परि, अप ।

ऊपरनिर्दिष्ट उपसर्ग-सहित शब्दों के अर्थ बता कर यह भी बताओ कि उनमें से किस शब्द के साथ कौनसा उपसर्ग जुड़ा हुआ है । फिर प्रत्येक शब्द के साथ आगे दिये हुये उपसर्गों में से प्रत्येक को जोड़ कर उसका अर्थ बताओ ।

प्रत्येक श्रेणी में से दो उपसर्गसहित शब्दों को वाक्यों में प्रयुक्त करो ।

२—(क) इन समस्त शब्दों का व्यास करो (अलग अलग करो) और समासों के नाम बताओ ।

सर्वसम्मति, सर्वतोमुखी, सिद्धहस्त, गीताञ्जलि, महात्मा, सत्याग्रह, जातिभेद, समाचारपत्र, निर्बोध, युद्धघोषणा, आमोद-प्रमोद, सर्व-प्रथम, राजनीतिविशारद, महासमर,

किसान-समस्या, रुग्णावस्था, छात्रावास, कूप-मंडूक, विधान-समिति ।

(ख) इनको समस्त करो—

मृत्यु से संघर्ष, कार्य में कुशलता, ध्येय में सफलता, हिन्दू, मुस्लिम, और सिक्ख, पर का सुख देने वाला, देह का अवसान, शक्ति के अनुसार (अव्ययीभाव), राष्ट्र की भाषा, बहुत गुणों से सम्पन्न, खाली हाथों वाला, सब अंगों से पूर्ण ।

३—(क) इनमें सन्धियों को अलग करो—

वातावरण, उन्मुक्त, स्वागत, आनन्दामृत, रवीन्द्र, महात्मा, सत्याग्रह, मरणासन्न, सदाचार, दावाग्नि, वहिष्कार, षड्‌रस, अधिकाधिक, सिंहावलोकन, अध्ययन ।

(ख) इनमें सन्धि करो:—

रहस्य+उद्‌घाटन, प्र+नाम, वि+अवहार, सर्वतः+मुखी, परम+आत्मा, सत्+चरित्र, महा+ऋषि, गगन+इन्द्र, ईश्वर+उपासना, हत+आश, ईश्वर+इच्छा ।

४—(क) इनके वाच्य बदलो:—

इन्होंने त्यागशीलता का परिचय दिया । उस शृङ्खला को फिर जोड़ दिया गया है । वे वे उच्च आदर्श स्थापित किये गये । प्रभात मेरा स्वागत कर रहा है । जिसे मेरे सिवा कोई नहीं जानता । इस पर मेरी बड़ी प्रशंसा की गई आपने कालेज में प्रवेश किया । उनसे अपना

काम अपने हाथों से किया जाता है। खून की नदियाँ बहाना स्वदेशभक्ति और गौरव समझा जाता है। हम दूसरों को न मारेंगे।

(ख) इनमें रिक्तस्थानों को भरो—

जो चीज़ बुरी....उसका तो सुधार....ही चाहिए। तब से उनके पालन पोषण का....मोतीलाल जी के कन्धों पर.... पड़ा। इनकी राजनैतिक....विशेष....थी। दोनों पक्षों में....शुरू हो गई। परन्तु उपचार का कोई....न होता था। पर वे ...माने। उन्होंने तुरंत कलकत्ता को.... किया। नेहरू जी....निराश होने वाले....में से....थे।

५—(क) इनमें किस किस शब्द के साथ कौन कौन प्रत्यय लगा है?

आवश्यक, कर्मचारी, स्वतंत्रता, लचमीवाला, अपूर्णता, मनुष्यमात्र, सम्बंधी, भारतीय, साहित्यिक, लावण्य, हिचकिचाहट, सीमित, लज्जित, अन्तिम, रोगिणी, तृणवत्, वास्तविक, चपलता, निर्भयता, स्वाभाविक।

(ख) इन संज्ञाशब्दों से विशेषणशब्द बनाओ:—

धन, दया, इस्लाम, देश, मनुष्य, इतिहास, राजनीति, दूरदर्शिता, भारत, समय, तत्वकाल, ग्राम, ईश्वर, सम्प्रादाय, प्रताप।

(ग) इन विशेषणशब्दों से संज्ञाशब्द बनाओ:—

स्वतन्त्र, विचारणीय, संचालक, असभ्य, साहसी, सरकारी, दंड्य, समवयस्क, ग्राम्य, गायक, आवश्यक, प्रभावित, धार्मिक, निर्वासित, पाशविक ।

——

Emanuel Vidal

Girdhari

Lal